वर्ष 10, अंक 1, जनवरी-मार्च, 2024
पौष - चैत्र वि. सं. 2080 ₹50

त्रैमासिक

मंगल विमर्श

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

ISSN 2394-9929

भारतीय अध्यात्म की आधार भूमि योगवाशिष्ठ

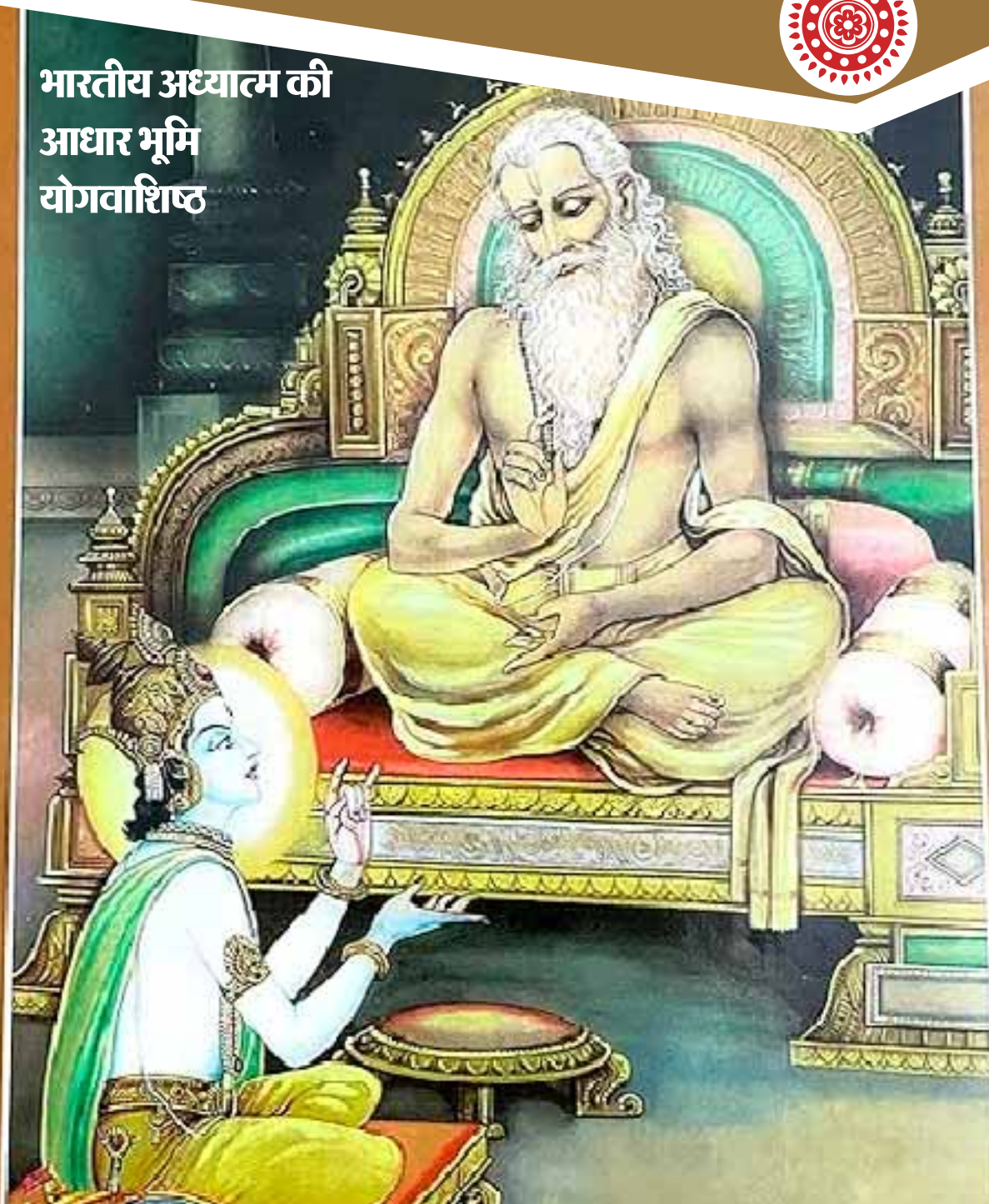

RELAXO

मज़बूती
बेमिसाल!

Salman is wearing RPG-35

Cushion-21

Fitness Plus-02

RPG-22

RPL-30

Hi-Heel-18

Shop at www.relaxofootwear.com

RNI DELHIN/2015/59919 **ISSN** 2394-9929

वर्ष 10, अंक 01, जनवरी - मार्च, 2024
पौष - चैत्र वि. सं. 2080 ₹ 50

मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सलाहकार
तिलक चानना
मुन्ना लाल जैन

स्वामी- मंगल सृष्टि के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता, बी-170, प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-110092 द्वारा प्रकाशित एवं अंकित प्रिंटिंग प्रेस, 9326, शाही मोहल्ला, रोहताश नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032, द्वारा मुद्रित। संपादक : सुनील पांडेय

RNI
DELHIN/2015/59919

ISSN
2394-9929

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-42633153
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

6-13
लोकसत्ता के आधार तत्त्व
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

14-21
भारतीय अध्यात्म की आधार भूमिः योगवाशिष्ठ
प्रो. रमेश भारद्वाज

22-27
समकालीन संस्कृति की रूपरेखा
डॉ. प्रमोद कुमार दुबे

28-43
लोक संचारक दीनदयाल उपाध्याय
आकाशदीप जरयाल, प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

44-47
जीवन में पश्चाताप से बचना है तो समय पर पहल करना सीखें
सीता राम गुप्ता

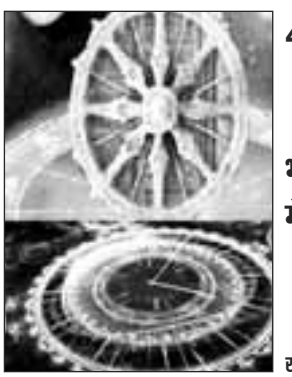

48-64
भारतीय ज्ञान परंपरा में पौराणिकता
रवि तिवारी

श्री रामजन्मभूमि मंदिर

अथ

जब भी कोई देश विदेशी आक्रांताओं की गुलामी से मुक्त होता है, वह अपनी खोई हुई अस्मिता व गौरव को पुनर्प्रतिष्ठित करने का भरपूर प्रयास करता है। हमारे जैसे देश के लिए यह सत्य और भी प्रभावी हो जाता है, जहाँ एक ओर कट्टरपंथी व निर्दय आतताइयों ने हमारे पूजास्थलों को बड़ी बर्बरता से नष्ट कर हमें गहरे आघात दिए, दूसरी और अँग्रेजों ने हमें हमारी आस्थाओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों से दूर करने व हमारी जीवन दृष्टि को पाश्चात्य शैली में ढालने के लिए हमारी चिरपरीक्षित, उत्कृष्ट शिक्षा प्रणाली को आमूलचूल बदल दिया।

ओमीश परुथी
प्रधान संपादक

अतीव खेद है कि हमारे शीर्ष नेतृत्व की ओर से इस दिशा में कोई रुचि व उत्साह नहीं दर्शाया गया, संकल्प शक्ति तो बहुत दूर की बात है। वे न तो निज भाषा के पुनर्स्थापन के लिए और न ही क्षत्-विक्षत् आस्था के प्रतीकों के पुनर्निर्माण के लिए कुछ ठोस कदम उठा सके। सोमनाथ के मंदिर का पुनरुत्थान का काम भी बड़े अनमने ढंग से पूरा हुआ और हिंदी भाषा को लागू करने में भी जी भर कर कोताही की गई। जिसका परिणाम हम अब तक भुगत रहे हैं।

संभवतः इसका कारण यह था कि हमारे प्रमुख आकाओं का चिंतन व दृष्टिकोण दासता की वृत्ति के कारण अँग्रेजों जैसा ही हो गया था। अतः उन्हें अपने सांस्कृतिक प्रतीकों से की गई अवमानना व तिरस्कार से कोई मानसिक क्लेश नहीं था। उन्हें फिर से स्थापित व समादृत करने की उनमें न चाह थी और न इच्छा शक्ति । जनसामान्य में कहीं इसकी माँग उठती भी तो वे तुष्टिकरण की परवशता के कारण ऐसे कार्यों से दूरी बनाए रखकर अपने सेकुलर होने का ढोंग रचते थे।

यही कारण है कि पहले मुगल शासक बाबर द्वारा तुड़वाए गए अयोध्या स्थित राममंदिर के पुनर्निर्माण के लिए हिंदुओं को शताब्दियों तक संघर्ष करना पड़ा। पाँच सौ साल की लंबी प्रतीक्षा करनी पड़ी। अपने ही धर्म के विरोधियों ने श्रीराम के अस्तित्व को मानने से ही इनकार कर दिया। न्यायालय में भी जाकर बड़ी निर्लज्जता से राममंदिर के पुनर्निर्माण में बाधाएँ उत्पन्न की। लेकिन आस्थावान हिंदू हतोत्साहित नहीं हुए। तन मन धन से इस पुनीत कार्य में संलग्न रहे।

अंततः जीत सत्य की हुई और अयोध्या में विराट् मंदिर में राम लला की भव्य मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा का सौभाग्यशाली क्षण प्रस्तुत हो रहा है। यह अवसर सदियों से आतुर जनमानस के लिए किसी महोत्सव से कम नहीं है।

संपूर्ण देश में हर्ष की लहर है । वास्तव में स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की यह एक अत्यंत गौरवमयी उपलब्धि है।

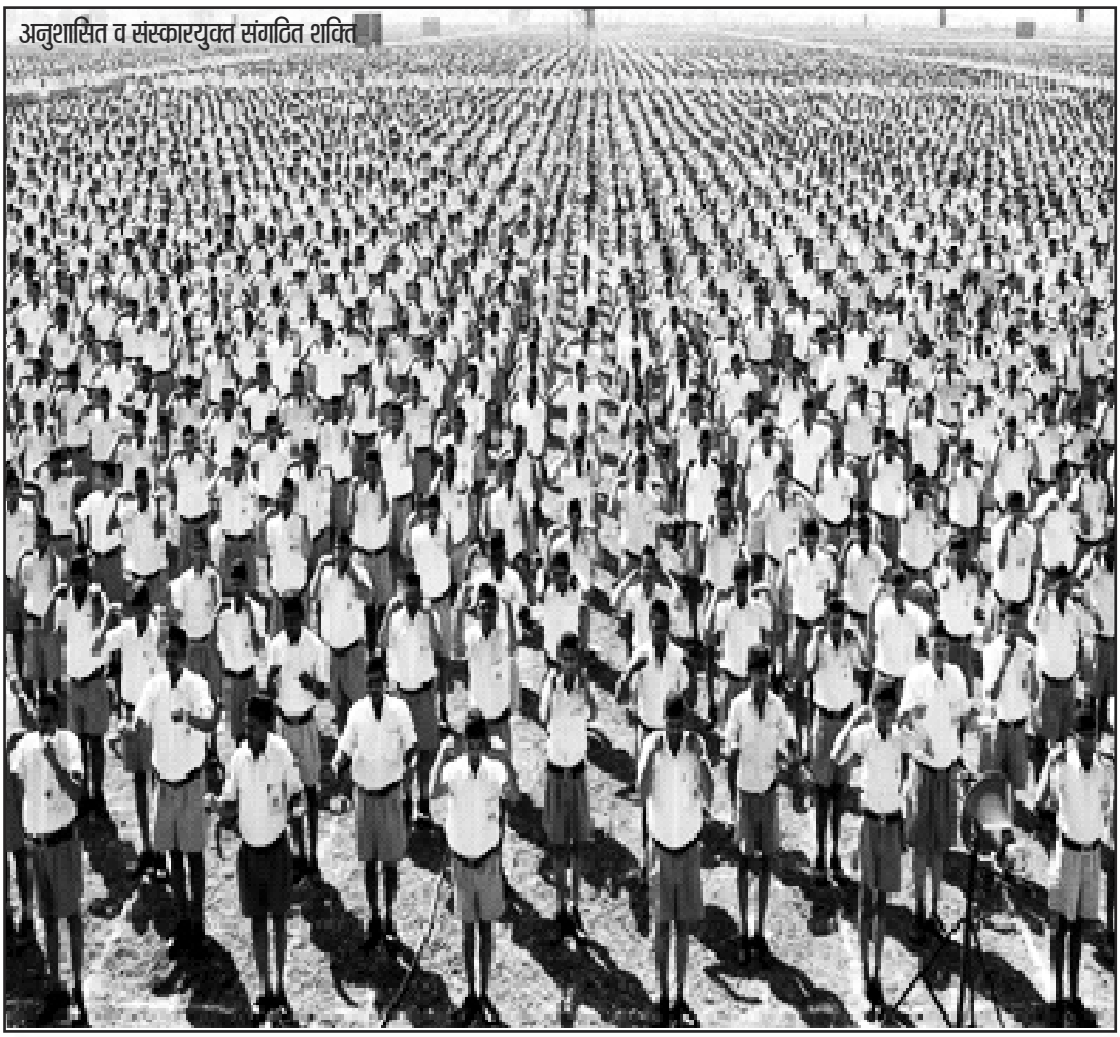
अनुशासित व संस्कारयुक्त संगठित शक्ति

समाज में 'लोक सत्ता' या 'समाज सत्ता' का सार्वकालिक महत्त्व है। लोकतंत्र में तो इसका महत्त्व और भी अधिक है। संगठित, संस्कारयुक्त, सामर्थ्यशाली एवं स्वनियामक जनसमूह का नाम ही लोकसत्ता है। इसी को पं. दीनदयाल उपाध्याय ने विराट् कहा था और इसी को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्रार्थना में 'संहता कार्य शक्ति' कहा गया है। श्री अरविंद ने राष्ट्र को कठिनाई से निकालने के लिए जो मार्ग बताया है, वह है राजनीति को किनारे करके राष्ट्र अर्थात् समाज को संगठित करना। स्वामी विवेकानंद का भी कहना था कि आज देश की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है एक प्रबल, प्रभावी एवं विस्तृत संगठन खड़ा करना। संगठन किसे कहेंगे, संगठन का स्वरूप क्या हो, इसके आधारभूत तत्त्व क्या है, इसकी कसौटी क्या है और लोक सत्ता के कार्य क्या हैं? प्रस्तुत लेख में ऐसे सभी प्रश्नों की विस्तृत विवेचना कर रहे हैं, प्रसिद्ध सामाजिक चिंतक डॉ. बजरंग लाल गुप्ता –

डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

लोकसत्ता के आधार तत्त्व

प्रत्येक परिस्थिति, समय तथा सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में 'लोकसत्ता' या 'समाज सत्ता' का महत्त्वपूर्ण स्थान रहता आया है किंतु वर्तमान लोकतंत्रीय व्यवस्था में तो लोक और लोकसत्ता का महत्त्व और भी आधिक हो जाता है। लोकतंत्र में यह अपेक्षा रहती है कि तंत्र (व्यवस्था) लोक के अनुसार, लोक के द्वारा और लोक हित में चले। इस दृष्टि से भारत की वर्तमान लोकतंत्रीय व्यवस्था में लोकसत्ता एवं इसके आधार तत्त्वों को समझ लेना आवश्यक है।

संगठित, संस्कारयुक्त, सामर्थ्यशाली एवं स्वनियामक जनसमूह का नाम ही लोकसत्ता है। इसी को पं. दीनदयाल उपाध्याय ने विराट् कहा था और इसी को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की प्रार्थना में 'संहता कार्य शक्ति' कहा गया है। भारत ने इस समाजसत्ता को एक ध्रुवीय नहीं बल्कि बहु ध्रुवीय माना है जैसे परिवार, कुल, जाति (वर्ण), ग्रामसभा, आश्रम व्यवस्था, ऋषि-साधु-संत परंपरा, धर्मस्थान, गुरुकुल (शिक्षा संस्थान) आदि। श्री अरविंद ने राष्ट्र को कठिनाई से निकालने के लिए जो मार्ग बताया है, वह

है राजनीति को किनारे करके राष्ट्र अर्थात् समाज को संगठित करना। स्वामी विवेकानंद का भी कहना था कि आज देश की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है एक प्रबल, प्रभावी एवं विस्तृत संगठन खड़ा करना। यहाँ यह भी विचारणीय है कि क्या जोर जबर्दस्ती या पैसे देकर या क्षणिक स्वार्थ भावना को भड़काकर इकट्ठा की गई व नारे लगाती भीड़ को लोकसत्ता कहा जा सकता है? उदाहरण के लिए कश्मीर घाटी में पत्थर फेंकने वाले बच्चे; स्कूल व कॉलेज में नकल रोकने, रैगिंग रोकने, अपराध में लिप्त होने पर कार्यवाही करने आदि का विरोध करते छात्रों की भीड़; स्थानीय निवासियों के हितों की लड़ाई लड़ने के नाम पर चल रहे नक्सली आन्दोलन; देश के विभिन्न हिस्सों में सक्रिय अलगाववादी गुट; मीडिया प्रचार के कारण अनशन व आंदोलन के समय तमाशबीनों की जुटने वाली भीड़, आरक्षण के नाम पर चलने वाले विभिन्न आंदोलन आदि।

भारतीय चिंतन में समाज को स्वयंभू विकासमान माना गया है। पश्चिम के विचारक कभी-कभी समाज (या राष्ट्र) व राज्य को लगभग पर्यायवाची मानकर ही विश्लेषण कर बैठते हैं, अतः उनकी दृष्टि में राष्ट्र और राज्य एक ही हैं। इसी में से आगे चलकर राष्ट्र - राज्य की संकल्पना सामने आयी और इसी कारण विभिन्न राज्यों की संयुक्त संस्था को संयुक्त राष्ट्र संघ नाम पड़ा।

इस प्रकार लोकसत्ता मात्र भीड़ का नाम नहीं है। संस्कारयुक्त लोगों का एकत्र आना, एक साथ काम करना, समान सोच रहना, विविधताओं में एकता का सूत्र पहचानकर एकता स्थापित करते हुए लोकसंगठन खड़ा करने से ही लोकसत्ता अस्तित्त्व में आ पाती है। अभी हाल ही में विश्व के कुछ देशों में जैसे मिस्र, लीबिया, फिलिपीन्स आदि में राजसत्ता के भ्रष्ट व तानाशाही रवैये के विरोध में जनाक्रोश के रूप में लोकसत्ता का प्रकटीकरण देखने को मिला है। पर इसे भी लोकसत्ता का स्थायी व संतुलित स्वरूप नहीं कहा जा सकता। अतः लोकसत्ता के मूलभूत घटकों, इसके मुख्य कार्यें व कसौटियों के बारे में अधिक गहराई से विचार करना आवश्यक हो जाता है।

लोकसत्ता के प्रमुख तत्त्व या घटक

पश्चिम के विचारकों ने समाज का उद्भव सामाजिक समझौते में से माना है जबकि भारतीय चिंतन में इसे स्वयंभू विकासमान माना गया है। पश्चिम के विचारक कभी -कभी समाज (या राष्ट्र) व राज्य को लगभग पर्यायवाची मानकर ही विश्लेशण कर बैठते हैं, अतः उनकी दृष्टि में राष्ट्र और राज्य एक ही हैं। इसी में से आगे चलकर राष्ट्र - राज्य (Nation-State) की संकल्पना सामने आयी और इसी कारण विभिन्न राज्यों की संयुक्त संस्था को संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) नाम पड़ा। किंतु हमारी दृष्टि में राष्ट्र व राज्य पृथक संकल्पनायें हैं और राष्ट्र सत्ता का प्रकटीकरण समाजसत्ता के रूप में होता है, राज्य सत्ता के रूप में नहीं। भारतीय चिंतन के अनुसार तो विभिन्न संस्थाओं के समग्र-समन्वित -एकात्म मिलन में से ही लोकसत्ता की उत्पत्ति होती है। लोकसत्ता के प्रमुख घटकों का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है -

सामाजिक

भारत की समाज व्यवस्था के विभिन्न घटकों को पुनः दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः (क) सामाजिक इकाइयों के रूप में व्यक्ति , परिवार, वर्ण, जाति, समुदाय आदि (ख) भौगोलिक इकाइयों के रूप

में ग्राम, जनपद, पंचायत, खंड, तहसील, जिला, अंचल, प्रदेश/प्रांत आदि। इन सब स्तरों पर विभिन्न संस्थायें एवं सामाजिक संस्थायें कार्यरत रहती हैं। ये सब संस्थायें रीति-रिवाजों, मान्यताओं व परंपराओं के आधार पर चलती हैं। यहाँ विवाह प्रथा, पारिवारिक व सामाजिक संबंधों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। इन सब सामाजिक संस्थाओं को देश-काल की परिस्थितियों, समाज की प्रकृति व प्रवृत्ति के संदर्भ में ही देखा और समझा जाना चाहिए और आवश्यकतानुसार इनमें परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन की तैयारी भी बनाये रखना चाहिए।

लोकसत्ता का स्वरूप चतुर्भुजी है। इसके सब घटकों में युगानुरूप व्याख्या-विवेचन, परिवर्तन- परिवर्धन-संशोधन व नवरचना की आवश्यकता रहती है। लोकसत्ता का गतिमान बने रहना बहुत कुछ इसी पर निर्भर करता है। लोकसत्ता को पुष्ट, प्रभावी, सक्रिय व सामर्थ्यवान बनाने की दृष्टि से चार प्रकार के कार्य सतत चलते रहना चाहिए।

धार्मिक -सांस्कृतिक

मठ -मंदिर , गुरुद्वारे, देवस्थान-धर्मस्थान-तीर्थस्थान; भारतोत्पन्न विभिन्न मत-पंथ संप्रदाय - इनकी विभिन्न संस्थायें/संगठन; संत महात्मा-गुरु परंपरा; कथाकार - प्रवचनकार; उत्सव-पर्व -त्यौहार-मेले, दान-दक्षिणा की परंपरायें; धार्मिक -सांस्कृतिक संस्थायें, विभिन्न धार्मिक यात्रायें, सांस्कृतिक जीवन मूल्य आदि - इन सबको मिलाकर लोकसत्ता का धार्मिक -सांस्कृतिक घटक बनता है। समाज की प्रकृति-प्रवृत्ति-संस्कृति, चित्त व मानस बनाने में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

शैक्षिक

शिक्षा संस्थायें (आधुनिक व परंपरागत दोनों), शोध केंद्र, संस्कार -केंद्र, विद्यालयीन शिक्षा; औपचारिक-अनौपचारिक शिक्षा- संस्कार तंत्र व परंपरायें; शिक्षा प्रणाली, पाठ्यक्रम, व्यवस्था- तंत्र आदि सब बातों को मिलाकर लोकसत्ता का तीसरा महत्त्वपूर्ण घटक बनता है। समाज में बालक- बालिकाओं की प्रतिभा विकास, समाज की आवश्यकता के अनुसार योग्यता व कुशलता के निर्माण और व्यक्तियों के चरित्र निर्माण में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

आर्थिक

अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों (यथा कृषि, खनन, निर्माण, छोटे व बड़े उद्योग, शिल्प एवं सेवा क्षेत्रों) में कार्यरत विभिन्न तंत्र-रचनायें - व्यवस्थायें; अर्थव्यवस्था के विभिन्न वर्गों (यथा उत्पादक, उपभोक्ता, कृषक, उद्योजक, मजदूर कर्मचारी, व्यापारी, शिल्पकार, शिक्षक, व्यवसायी, स्वनियोजित आदि) की संस्थायें/संगठन आदि तथा इन सबके बीच आपसी संबंध। केंद्रीकरण अथवा विकेंद्रीकरण आधारित अर्थतंत्र, धन व धनार्जन के संबंध में दृष्टिकोण, उत्पादन प्रणाली, उपभोगशैली, विनिमय - वितरण प्रणाली, मूल्य प्रणाली, कराधान व्यवस्था, सरकारी बजट व अन्य आर्थिक नीतियाँ, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंध, तकनीक-तकनोलॉजी का चयन व दृष्टिकोण- ये सब मिलाकर लोकसत्ता का चतुर्थ महत्त्वपूर्ण घटक बनाते हैं। इसी के आधार पर किसी देश की आर्थिक स्थिति एवं विकास की दृष्टि, दिशा व गति का निर्धारण होता है।

इस प्रकार लोकसत्ता का स्वरूप चतुर्भुजी है। इन सब घटकों में युगानुरूप व्याख्या-विवेचन, परिवर्तन-परिवर्धन-संशोधन व नवरचना की आवश्यकता रहती है। लोकसत्ता का गतिमान बने रहना बहुत कुछ इसी पर निर्भर करता है।

समाज की समस्याओं के निराकरण के लिए संगठन के महत्व को प्रतिपादित करने वाले पुरोधा
महर्षि अरविंद स्वामी विवेकानंद डॉ. केशव राव बलिराम हेडगेवार

लोकसत्ता के कार्य

लोकसत्ता को पुष्ट, प्रभावी, सक्रिय व सामर्थ्यवान बनाने की दृष्टि से चार प्रकार के कार्य सतत चलते रहना चाहिए- लोक संपर्क, लोक संगठन, लोक जागरण एवं लोक संस्कार (या लोकमत परिष्कार)। इस प्रकार संक्षेप में लोकसत्ता के चर्तुआयामी कार्य हैं।

लोक संपर्क

देश के प्रत्येक गाँव, प्रत्येक बस्ती एवं प्रत्येक वर्ग तक व्यापक, सजीव-सक्रिय संपर्क की रचना -योजना रहनी चाहिए। किन्हीं विशिष्ट उद्देश्यों व मुद्दों को लेकर किया जाने वाला लोक संपर्क ही लोकसत्ता को मजबूती देता है। सही व समाजोपयोगी जानकारियों का आदान-प्रदान सतत होते रहना चाहिए।

लोक संगठन

श्री अरविंद, स्वा. विवेकानंद समेत सभी महापुरुषों ने समाज की समस्याओं को हल कर उसके उत्थान के लिए संगठन को आवश्यक माना है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक. संघ के संस्थापक डॉ हेडगेवार का तो समाज संगठन पर ही सर्वाधिक जोर रहा है। ' संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्' के रूप में वैदिक ऋषि भी समाज संगठन की आवश्यकता एवं उसकी पद्धति की ओर ही संकेत करते हैं। लोकसत्ता के विभिन्न घटकों और उनके अंतर्गत कार्यरत विभिन्न संस्थाओं के बीच संपर्क-संवाद -सहयोग की मानसिकता व भूमिका का बनना आवश्यक है। अपने देश का इतिहास इस बात का साक्षी है कि शक्ति , बुद्धि, योग्यता एवं धन-संपदा होने के बावजूद भी मात्र संगठन के अभाव के कारण हम सदियों तक लुटते-पिटते रहे और अपमान व दासता का जीवन जीने को मजबूर होते रहे। सर्वसमावेशी संगठन ही लोकसत्ता को स्थायी आधार प्रदान कर सकता है।

लोक जागरण

लोकसत्ता को सक्रिय व सजीव बनाये रखने के लिए लोक जागरण का काम भी सतत चलते रहना चाहिए। लोक जागरण के विभिन्न प्रकारों व माध्यमों में आजकल मीडिया (प्रिंट व इलेक्ट्रोनिक दोनों), प्रचार तंत्र, सिनेमा, नुक्कड़ नाटक, लोककथायें, नृत्य-संगीत की विभिन्न विधायें, साहित्य के विभिन्न प्रकार (यथा पुस्तकें, लेख, कहानी, कविता, नाटक, संस्मरण,

जीवन-चरित आदि), कथा-प्रवचन, सत्संग, विभिन्न प्रकार के अभियान आदि को शमिल कर सकते हैं। पिछले वर्षों के दौरान लोकजागरण के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और शेष समाज द्वारा बहुत ही सफल और प्रेरणाप्रद प्रयास हुए हैं। इनमें संघ द्वारा चले प्रयासों में मुख्य हैं – गोरक्षा अभियान, विवेकानंद शिला स्मारक, मीनाक्षीपुरम् में मतान्तरण की घटना के बाद संस्कृति रक्षा निधि योजना, भारत माता पूजन कार्यक्रम, एकात्मता रथयात्रा, रामजन्मभूमि आंदोलन, रामसेतु आंदोलन, अमरनाथ आंदोलन, डा. हेडगेवार जी एवं गुरुजी की जन्मशती के कार्यक्रम - स्वदेशी आभियान, विश्व मंगल गो ग्राम यात्रा आदि।

समाज जीवन में भी विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से लोकजागरण के प्रयास हुए हैं और हो रहे हैं, जैसे धार्मिक- सांस्कृतिक जागरण, विभिन्न संत महात्माओं द्वारा कथा-प्रवचन के विशाल कार्यक्रम, कांवड़िया यात्रा, पण्ढ़रपुर व शबरी मल्लै की यात्रा, कुंभ मेले, गायत्री परिवार के अश्वमेध यज्ञ, श्री श्री रविशंकर द्वारा आयोजित विभिन्न कार्यक्रम, साई बाबा के भक्तों के सम्मेलन, विभिन्न मत-पंथों द्वारा आयोजित विभिन्न विशल धार्मिक सम्मेलन, बाबा रामदेव के योग सम्मेलन आदि।

यहाँ एक बात अवश्य ध्यान देन योग्य है कि समाज के जागरण के कार्यक्रम तो बहुत चल रहे हैं किन्तु लोक हित के विरूद्ध बनने वाली नीति अथवा किये जाने वाले कार्यों के प्रति समाज में स्वतः आक्रोश नहीं आ पाता, अतः जागरण शाक्ति को सक्रिय शक्ति में बदलना भी नितांत आवश्यक है।

लोक जागरण के लिए सफल हुए प्रेरणाप्रद प्रयासों में से एक महत्वपूर्ण प्रयास कन्याकुमारी स्थित 'विवेकानंद शिलाा स्मारक'

लोक संस्कार या लोक मत परिष्कार

अपरिष्कृत लोकमत ही लोकतांत्रिक समाज की सब समस्याओं की जड़ है। अतः लोकमत परिष्कार आवश्यक है। लोकमत को विवेकवान बनाना सामाजिक समस्याओं के निदान व समाधान की गारंटी है। पर यह काम सरकार व राजनीतिक संस्थाओं की बजाय सामाजिक -सांस्कृतिक प्रयत्नों से होना चाहिए, यह कार्य लोकेशणाओं (विशेषतः राजनीतिक ऐशणाओं) से ऊपर उठे हुए वीतराग संन्यासियों एवं राष्ट्र व समाज समर्पित व्यक्तियों के द्वारा ही हो सकता है। विचारनिष्ठ, मुद्दा आधारित, शुद्ध आचरण से युक्त वातावरण बनाना ही लोकमत-परिष्कार का मुख्य काम है। लोकराज लोकलाज, लोकमर्यादा और लोकमन के अनुसार चले, यह समय की आवश्यकता है।

संसदीय लोकतंत्र में लोकसत्ता जागरण से राजसत्ता में परिवर्तन लाया जा सकता है। उदाहरण के लिए आपात् स्थिति, असम आंदोलन, रामजन्मभूमि आंदोलन, बोफोर्स कांड विरोधी आंदोलन आदि के दौरान हुए लोक जागरण से सत्ता परिवर्तन तो हुआ। पर क्या ये परिवर्तन अच्छे व स्थायी परिणाम वाले रहे? तो उत्तर है नहीं। क्या कारण रहा? इस संबंध में श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी कहते थे कि तालाब का पानी यदि गंदा है तो सोने का नल लगाने से पानी अच्छा नहीं आयेगा, व्याकरण सुधारने के लिए केवल अच्छा पैन देने से काम नहीं चलता। इसके लिए तो मतदाता को दृष्टि संपन्न, विवेकशील शिक्षित-संस्कारित एवं देशानुकूल बनाना ही होगा।

सच्ची अच्छी लोकसत्ता की कसौटियाँ

लोकसत्ता के स्वरूप एवं दिशा को ठीक बनाये रखने के लिए कुछ आवश्यक बातों को ध्यान में रखना जरूरी है। ये वे कसौटियाँ हैं जिनका पालन करने पर ही लोकसत्ता का स्वरूप सच्चा व अच्छा बना रह सकता है।

● इस दृष्टि से सबसे प्रथम आवश्यकता है जननी-जन्मभूमि भारत माता को ही आराध्य देवी मानकर राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा जगाना। जन-जन में सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठा एवं तदनुसार आचरण-व्यवहार की परंपरा को सुदृढ़ बनाना तथा तदनुसार ही देश में शिक्षा व संस्कार की रचना-योजना बनानी होगी। निजी स्वार्थ की जगह सामाजिक हित दृष्टि बनें। जाति, मत-पंथ-सम्प्रदाय, भाषा, क्षेत्र एवं वर्ग की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर राष्ट्रीय दृष्टि विकसित हो।

● दूसरी महत्त्वपूर्ण कसौटी है धर्म-आध्यात्मिकता - नैतिकता से परिपूर्ण जीवन। हमारी प्रतिबद्धता सदाचार के प्रति होनी चाहिए भ्रष्टाचार के प्रति नहीं। श्री अरविंद एवं स्वा. विवेकानंद का स्पष्ट मानना था कि भारत में समाज संगठन एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण का एक मात्र आधार है धर्म एवं आध्यात्मिक शक्ति का जागरण। वे कहा करते थे कि भारत की राष्ट्रीय आत्मा धर्म है। हमारे पूर्वजों ने धर्मरक्षा के लिए ही सबकुछ साहसपूर्वक सहन किया था। अतः राष्ट्रीयता की रक्षा हेतु हमें आध्यात्मिकता केआधार पर टिके रहना होगा। यदि पाश्चात्य भौतिकतावादी सभ्यता के चक्कर में पड़कर हम अपना

श्री अरविंद एवं स्वा. विवेकानंद का स्पष्ट मानना था कि भारत में समाज संगठन एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण का एक मात्र आधार है धर्म एवं आध्यात्मिक शक्ति का जागरण। वे कहा करते थे कि भारत की राष्ट्रीय आत्मा धर्म है। हमारे पूर्वजों ने धर्मरक्षा के लिए ही सबकुछ साहसपूर्वक सहन किया था। अतः राष्ट्रीयता की रक्षा हेतु हमें आध्यात्मिकता केआधार पर टिके रहना होगा। यदि पाश्चात्य भौतिकतावादी सभ्यता के चक्कर में पड़कर हम अपना आध्यात्मिकता का आधार त्याग देंगे तो हमारे राष्ट्र का मेरूदंड ही टूट जाएगा।

स्वा. विवेकानंद ने कहा था, 'हमें चाहिएं, प्रज्ञावान, वीर और तेजस्वी युवक, जो मृत्यु से आलिंगन करने का, समुद्र को लाँघ जाने का साहस रखते हों। सिंह के पौरूष से यक्ुत , परमात्मा के प्रति अटूट निष्ठा से संपन्न और पावित्र्य की भावना से उद्दीप्त सहस्रों नर-नारी, दरिद्रों व उपेक्षितों के प्रति हार्दिक सहानुभूति लेकर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमण करते हुए मुक्ति का, सामाजिक पुनरूत्थान का, सहयोग और समता का संदेश देंगे।'

आध्यात्मिकता का आधार त्याग देंगे तो हमारे राष्ट्र का मेरूदंड ही टूट जाएगा।

संसार में समाज सरचना के दो प्रकार के प्रयास किये गये हैं। एक का अधिष्ठान धर्म, अध्यात्मिकता और अतीन्द्रीय ज्ञान रहा है, तो दूसरे का आधार केवल सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति, जड़वाद और यथार्थवाद रहा है। हम पहले प्रकार के पक्षधर रहे हैं और उसी को बनाये रखने में हमारा और समूचे संसार का भला है।

लोकसत्ता राजसत्ता पर नियमन-नियंत्रण रखकर तभी सही प्रकार से काम कर सकती है जब उसके भीतर से गैर-राजनीतिक समाजिक-नैतिक नेतृत्त्व उभरे। इसके लिए लोकसत्ता के विभिन्न घटकों से संबंधित संस्थाओं व संगठनों का नेतृत्त्व ऐसे लोगों के हाथों में रहना आवश्यक है जो राजनीतिक दलों व राजनेताओं का पिछलग्गू न बने और उन से सहायता व सुविधायें प्राप्त करने से बचे और स्वयं अपने को राजनीतिक व सत्ता की आकांक्षा से मुक्त रखे।

● लोकसत्ता के लिए तीसरी महत्त्वपूर्ण कसौटी है अर्थशुचिता, प्रामाणिकता एवं पारदर्शी आर्थिक व्यवहार। विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक- रचनात्मक संस्थाओं के लिए यह आवश्यक है कि वे समाज कार्य के लिए एकत्रित धन का ठीक हिसाब-किताब रखें और उसके व्यय में पूर्ण सावधानी बरतें। लोकसत्ता के सुचारू कार्य संचालन के लिए चौथी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है संस्कारित व श्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण कार्यकर्त्ताओं की मालिका का तैयार होते रहना। किसी भी संस्था व संगठन का आधार तो उसके सद्गुण संपन्न कार्यकर्त्ता ही होते हैं। अतः कार्यकर्त्ता निर्माण का काम सदैव चलते रहना चाहिए। ऐसे श्रेष्ठ कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता को समझाते हुए स्वा. विवेकानंद ने कहा था, 'हमें चाहिएं, प्रज्ञावान, वीर और तेजस्वी युवक, जो मृत्यु से आलिंगन करने का, समुद्र को लाँघ जाने का साहस रखते हों।..... सिंह के पौरूष से यक्ुत , परमात्मा के प्रति अटूट निष्ठा से संपन्न और पावित्र्य की भावना से उद्दीप्त सहस्रों नर-नारी, दरिद्रों व उपेक्षितों के प्रति हार्दिक सहानुभूति लेकर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमण करते हुए मुक्ति का, समाजिक पुनरूत्थान का, सहयोग और समता का संदेश देंगे।'

संक्षेप में, हर परिस्थिति में सजग, सतर्क, सक्रिय एवं सात्विक लोकसत्ता का होना ही समाज के कल्याण की स्थायी गारंटी है। हम सब मिलकर इस दिशा में क्रियाशील हों -यही समय और परिस्थिति की हम सबसे अपेक्षा है।

लेखक वरिष्ठ अर्थशास्त्री व चिंतक हैं।

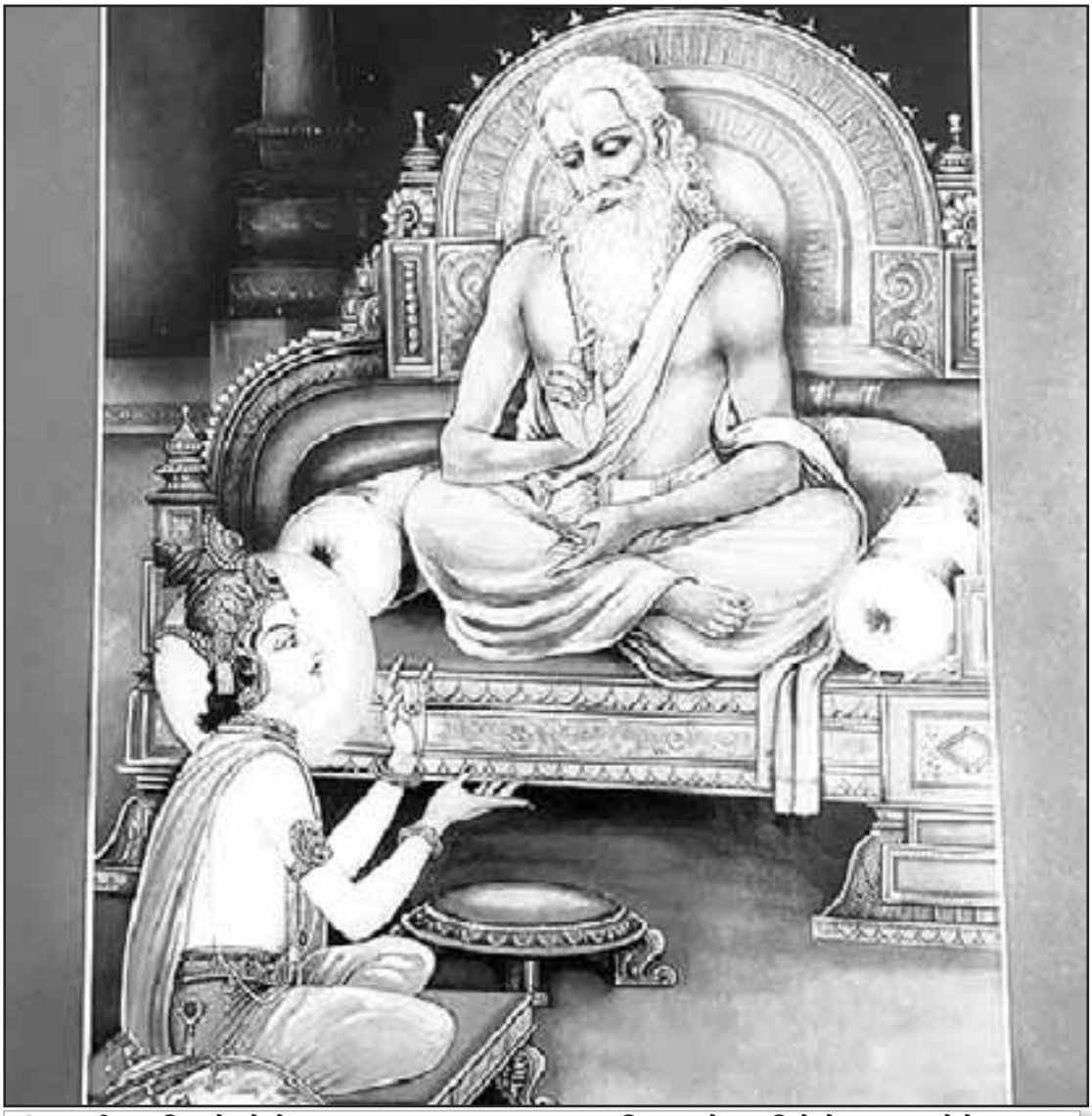

भारतीय साहित्य के दोनों महाकाव्य रामायण एवं महाभारत विगत् अनेक सदियों से कथावाचकों के माध्यम से भारतीय जनमानस के धार्मिक एवं सामाजिक चितन को परितोष प्रदान करते रहे हैं। वहीं योगवाशिष्ठ मुमुक्ष, तत्त्वदर्शी समाज की आध्यात्मिक बुभुक्षा को परितृप्त करने की ऐतिहासिक भूमिका में सदियों से तत्पर रहा है। भारतीय दार्शनिक साहित्य में यही एकमात्र ऐसा असांप्रदायिक प्रकाशपुंज है जो जाति, लिंग, धर्म, वय, वर्ग आदि भेदों को नकारता हुआ मानव के परमपुरुषार्थ-मोक्ष की प्राप्ति में मार्गदर्शक है। विशेषरूप से भारतीय समाज के संकटकाल में संतों की वाणी में अनुस्यूत हो जनमानस का संबल बना रहा। गुरु वशिष्ठ और श्रीरामचंद्र के आध्यात्मिक संवाद के रूप में निबद्ध इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की अपरिहार्यता पर प्रकाश डाल रहे हैं संस्कृत के विद्वान लेखक प्रो. रमेश भारद्वाज–

प्रो. रमेश भारद्वाज

भारतीय अध्यात्म की आधार भूमिः योगवाशिष्ठ

योगवाशिष्ठ एक ऐसा ग्रंथरत्न है जो मानवीय मेधा-कृत चिंतन की पराकाष्ठा का परिचायक है। परंपरा श्रीमद्भगवद्गीता को उपनिषदों के सारभूत ग्रंथ के रूप में स्थापित करती है। वहीं योगवाशिष्ठ एक ऐसा ग्रंथ विशेष है जिसमें सहस्राब्दियों से सातत्यपूर्ण विकसित भारतीय अध्यात्म-चिंतन की वैविध्यपूर्ण परंपराओं का मानवोपयोगी सर्वांगपूर्ण चिंतन नवनीत के रूप में उपलब्ध होता है।

भारतीय साहित्य के दोनों महाकाव्य रामायण एवं महाभारत विगत् अनेक सदियों से कथावाचकों के माध्यम से भारतीय जनमानस के धार्मिक एवं सामाजिक चिंतन को परितोष प्रदान करते रहे हैं। वहीं योगवाशिष्ठ मुमुक्ष, तत्त्वदर्शी समाज की आध्यात्मिक बुभुक्षा को परितृप्त करने की ऐतिहासिक भूमिका में सदियों से तत्पर रहा है। भारतीय दार्शनिक साहित्य में यही एकमात्र ऐसा असांप्रदायिक प्रकाशपुंज है जो जाति, लिंग, धर्म, वय, वर्ग आदि भेदों को नकारता हुआ मानव के परमपुरुषार्थ-मोक्ष की प्राप्ति में

मार्गदर्शक है। विशेषरूप से भारतीय समाज के संकटकाल (मध्यकाल-1200 ई. से 19वीं सदी तक) में संतों की वाणी में अनुस्यूत हो जनमानस का संबल बना रहा।

सनातन परंपरा का आर्ष ग्रंथ

योगवाशिष्ठ, महारामायण, आर्षरामायण, वाशिष्ठरामायण, ज्ञानवाशिष्ठ आदि अनेक नामों से संबोधित इस ग्रंथ को हमारी परंपरा ने आर्ष ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की। चूंकि यह आर्ष ग्रंथ है अतः उसका कालनिर्धारण असंभव सा है। फिर भी विद्वानों ने भारतीय साहित्य के विभिन्न ग्रंथों से तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर ईसा. पू. से 14वीं शताब्दी तक का तिथ्यंकन सुझाया है।

योगवाशिष्ठ के अन्तः साक्ष्यों के आधार पर परंपरा के अनुसार महर्षि वाल्मीकि इस ग्रंथ के रचयिता हैं। जिन्होंने श्री रामचंद्र एवं उनके गुरुवशिष्ठ के आध्यात्मिक वार्तालाप को ग्रंथ रूप में निबद्ध किया। यह रामायण के अंतिम भाग उत्तरकांड के रूप में प्रतिष्ठित भी हुआ।

किंतु योगवाशिष्ठ के वर्तमान पाठ में वाल्मीकि के उत्तरवर्त्ती घटनाओं एवं विचारों की उपस्थिति के कारण आधुनिक विद्वान इसे वाल्मीकिकृत मानने में संदेह प्रकट करते हैं। पारंपरिक विद्वानों के अनुसार प्राचीन आर्ष दृष्टि भूत एवं भविष्य की घटनाओं को जानने की दैवी सामर्थ्य से संपन्न होती थी। अतः पूर्व में ही उत्तरवर्त्ती विषयों का समावेश स्वाभविक है। (Therefore, before the divine vision of our ancient Rsis all the events of past as well as future march in procession as recorded in the tablets of Chitragupta. K. Narayanaswami "A translation of Laghu-vasistha", Introduction p. xxii) इसके विपरीत पाश्चात्य विद्वान (Dr. J.N. Farquhar 'An Outline of Religious Literture of India, Delhi, 1968, p.228) इसे वेद कालीन के स्थान पर 13वीं या 14वीं सदी की रचना मानते हैं। उसी पाश्चात्य परंपरा का अनुसरण करते हुए डॉ. वी. राघवन् इसे 11वीं सदी से 13वीं सदी के मध्य में रचित मानते हैं (V. Raghavan 'The Date of Yogavāsistha Ramayana', Journal of Oriental Research, Vol.III, part-II, pp. 110-128)`````````````` अपने निष्कर्ष का आधार निम्नप्रदत्त तथ्यों को बनाया- कालिदास, भारवि, मातृगुप्त (छठी सदी), बाणभट्ट, भट्ट नारायण, भर्तृहरि, कुमारिल, शंकराचार्य मण्डन मिश्र (सातवीं सदी), भवभूति (8वीं सदी)। आनंदवर्धन (9वीं सदी) तथा राज शेखर (10वीं सदी) की रचनाओं में

योगवाशिष्ठ, महारामायण, आर्षरामायण, वाशिष्ठरामायण, ज्ञानवाशिष्ठ आदि अनेक नामों से संबोधित इस ग्रंथ को हमारी परंपरा ने आर्ष ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की। चूंकि यह आर्ष ग्रंथ है अतः उसका कालनिर्धारण असंभव सा है। फिर भी विद्वानों ने भारतीय साहित्य के विभिन्न ग्रंथों से तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर ईसा. पू. से 14वीं शताब्दी तक का तिथ्यंकन सुझाया है। योगवासिष्ठ के अन्तः साक्ष्यों के आधार पर परंपरा के अनुसार महर्षि वाल्मीकि इस ग्रंथ के रचयिता हैं, जिन्होंने श्री रामचंद्र एवं उनके गुरुवशिष्ठ के आध्यात्मिक वार्तालाप को ग्रंथ रूप में निबद्ध किया।

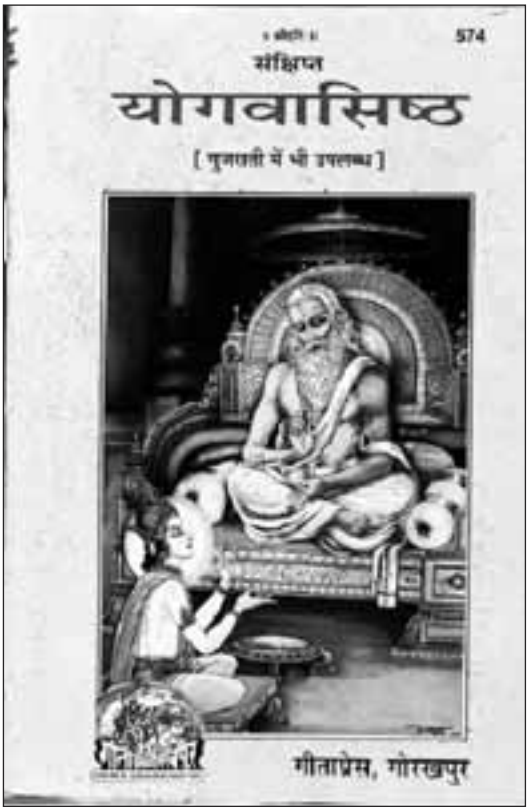

योगवाशिष्ठ से उक्ति साम्य, 1023 ई. में कर्णाटक के राजाओं के द्वारा पूर्वी क्षेत्र में घटित अतिक्रमण का योगवाशिष्ठ में उल्लेख तथा 1258 में रचित सूक्ति मुक्तावली में योगवाशिष्ठ के उद्धरणों की प्राप्ति ।

डॉ. टी.जी. मयणकर ("Yogavāsistha Ramayana: Study", Delhi 1977, pp-170-186) ने डॉ. राघवन् की तरह निर्णय सागर प्रेस से दो खंडों में प्रकाशित योगवाशिष्ठ के पाठ को आधार बनाकर सुझाया कि वाशिष्ठ रामायण के पाठ का विकास तीन चरणों में हुआ। उनके अनुसार मूलपाठ की रचना सूत्र-साहित्य के काल में हुई। दूसरे चरण में मोक्षोपाय वाला भाग तीसरी और सातवीं शताब्दी में जुड़ा। यह वह काल खंड है जो नागार्जुन के बाद एवं शंकराचार्य से पूर्व का है। तृतीय विकास चरण में 1150 ई. से 1250 ई. का काल खंड है जिसमें वर्तमान में प्राप्त पाठ ने अपनी पूर्णता को प्राप्त किया। यह अवधि काश्मीर में त्रिकदर्शन के चरम विकास का समय है। उनके अनुसार 1200 ई. तक इस ग्रंथ ने अपनी प्रामाणिकता एवं लोकप्रियता की धाक जमा दी थी।

प्रो. शिवप्रसाद भट्टाचार्य {Yogavāsistha Ramayana - Its probable date & place of inception' from proceedings of the 3rd AIOC (All India Oriental Conference), Madras, 1925, pp- 546-554}डॉ. राघवन् की तरह संस्कृत के लेखकों की रचनाओं में योगवाशिष्ठ के समकक्ष प्रयोगों के साथ वहाँ बौद्धधर्म-दर्शन के प्रभावों को दृष्टि में रखते हुए 10वीं से 12वीं सदी में योगवाशिष्ठ की रचना स्थिति की संभावना व्यक्त करते हैं। बंगाल के बौद्ध पाल राजाओं के काल में हिन्दूवादी दृष्टि से संपन्न ग्रंथ की असंभावना, 10वीं सदी में पश्चिम के राजाओं का पारसीक और ताम्रयवनों के साथ युद्ध का वर्णन (योगवाशिष्ठ111, 37, 20-24), पौराणिक हिंदूधर्म का वर्णन (योगवाशिष्ठ -I 15-32) तथा वेदांत दर्शन के संदर्भ इत्यादि को भी उन्होंने अपने मत की संपुष्टि में आधार बताया है।

इनके अतिरिक्त पी.सी. दीवानजी (The Date and place of Origin of the YogavāsisthaRamayana - From the proceedings of 7th AIOC, Baroda, 1933, pp15-30) 10वीं शताब्दी और एस. एन. दासगुप्त (History of Indian Philosophy, Vol-II, Cambridge 1952, p-231) 7वीं या 8वीं शताब्दी को योगवाशिष्ठ का रचनाकाल प्रतिपादित करते हैं ।

उपर्युक्त मतों से किंचित भिन्न मत प्रो. बी.एल. आत्रेय का है। उनके अनुसार छठी शताब्दी में

योगवाशिष्ठ में प्रतिपादित अद्वैतवाद अपरिपक्क रूप में है जिसे बाद में शंकराचार्य ने एक दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया। प्रो. आत्रेय के अनुसार शंकर के विवेकचूडामणि, अपरोक्षानुभूति एवं शतश्लोकी के गहन अध्ययन से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उन पर योगवाशिष्ठ का पर्याप्त प्रभाव है। प्रो. आत्रेय ने अपने इस मत के समर्थन में स्वामी भूमानंद के लेख को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया । योगवाशिष्ठ के तिथ्यंकन के विषय में विभिन्न मतों की स्थापना में प्रयुक्त तथ्यों का विश्लेषण हमें कुछ अन्य दृष्टि भी प्रदान करता है। यह ग्रंथ आर्ष परंपरा से प्राप्त है। जिसका कालनिर्धारण उसमें निहित विषय-वस्तु के आधार पर करना बेईमानी सा है।

योगवाशिष्ठ की रचना स्थिति मानना उपयुक्त है। उनके द्वारा प्रस्तुत तर्क इस प्रकार हैं –

- कोनोव (Harvard Oriental Series 'KarpuraManjari, p. 197), ए.बी. कीथ (Catalogue Bodlen Library Ms. 840) तथा विण्टरनित्श (History of Indian Literature, Vol-III, p-444) के अनुसार काश्मीर के अभिनंद (9वीं सदी) ने 6000 श्लोकों में 'योगवाशिष्ठसार' का संकलन किया।
- वेदांत के श्रेष्ठ आचार्य विद्यारण्य (14वीं सदी का पूर्वार्द्ध) ने न केवल योगवाशिष्ठ के 253 पद्यों को अपने ग्रंथ 'जीवनमुक्तिविवेक' में अपितु अपने दूसरे ग्रन्थ 'पंचदशी' में भी योगवाशिष्ठ को बहुतायत में उद्धृत किया। जो इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि 14वीं सदी तक यह ग्रंथ समाज में आद्धृत हो चुका था। प्रो. आत्रेय के तथ्य के विश्लेषण के साथ यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि 'संक्षेप-शारीरक' के रचयिता सर्वज्ञात्ममुनि (10वीं सदी) भी योगवासिष्ठ को उद्धृत करते हैं (सं.शा. 11-82)
- उनके अनुसार शंकराचार्य (8वीं सदी) योगवासिष्ठ से नितांत परिचित थे।
- योगवाशिष्ठ में प्रतिपादित अद्वैतवाद अपरिपक्क रूप में है जिसे बाद में शंकराचार्य ने एक दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया। प्रो. आत्रेय के अनुसार शंकर के विवेकचूडामणि, अपरोक्षानुभूति एवं शतश्लोकी के गहन अध्ययन से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उन पर योगवाशिष्ठ का पर्याप्त प्रभाव है। प्रो. आत्रेय ने अपने इस मत के समर्थन में स्वामी भूमानंद (Priority of Yogavasistha to śankarārcārya) के लेख को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया ।
- शंकर के परमगुरु आचार्य गौडपाद की माण्डूक्य-कारिका की भाषाशैली पूर्णतः योगवाशिष्ठ से प्रभावित है।
- भवभूति, भर्तृहरि, बाणभट्ट आदि सभी योगवाशिष्ठ की रचना के बाद के हैं। अतः उनकी कृतियों पर उसका प्रभाव ।
- योगवाशिष्ठ में बौद्ध महायान के माध्यमिक एवं विज्ञानवाद (5वीं सदी) के तत्त्वों का समावेश यह प्रकट करता है कि यह कृति छठी शताब्दी की है।

प्रो. आत्रेय के इस कथन से आजकल सभी विद्वान सहमति प्रकट करते हैं।

योगवाशिष्ठ के तिथ्यंकन के विषय में उपर्युक्त मतों की स्थापना में प्रयुक्त तथ्यों का विश्लेषण हमें कुछ अन्य दृष्टि भी प्रदान करता है। यह ग्रंथ आर्ष परंपरा से प्राप्त है। जिसका कालनिर्धारण उसमें निहित विषय-

वस्तु के आधार पर करना बेईमानी सा है। प्रो. म्यणकर द्वारा इसके पाठ का तीन चरणों में विकास दर्शाना, उस ओर कुछ संकेत करता है।

विगत् सहस्राब्दियों से भारतीय समाज तीन महान् ग्रंथों रामायण, महाभारत तथा योगवाशिष्ठ के कथ्य को कथावाचकों के माध्यम से मानवजीवन से संबंधित (आधिभौतिक, आदिदैविक एवं आध्यात्मिक) प्रश्नों का समाधान पाता रहा है। अतः महाभारत एवं रामायण के पाठनिर्धारण व समीक्षात्मक संस्करण निश्चित करने में जिन सिद्धांतों का आश्रय लिया गया था। वही दृष्टि योगवाशिष्ठ के पाठ के विषय में अपनानी चाहिए।

संस्कृत साहित्य के पहले समीक्षात्मक संस्करण (महाभारत) को बनाने में डॉ. वी. एस. सुक्थंकर ने माना कि महाभारत में पाठवृद्धि आदि श्रुतिपरंपरा के अंतर्गत कथावाचकों की करामात है। (V.S. SukthankarMahābhārata, Adiparvan, Critical Edition; Prolegomena pp. LXXVII-LXXIX, BORI, Poona) रामायण के संपादन में भी डॉ. भट्ट ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया।

मोक्ष के अभिलाषी साधकों का मार्गदर्शन

रामायण और महाभारत के कथावाचक पंडित, विद्वान, धर्मप्रचारक कोई भी हो सकते हैं। किंतु योगवाशिष्ठ के कथावाचक अध्यात्म जगत् के आत्मदर्शी महात्मा ही रहे हैं। जिनका उद्देश्य रहा जीवन के परमपुरुषार्थ मोक्ष के अभिलाषी साधकों का उपयुक्त मार्गदर्शन करना। अध्यात्म मार्ग के पथिक जिन प्रश्नों से उद्वेलित होते रहे हैं उनके समाधान परक व्याख्यान इस ग्रंथ की विषय-वस्तु हैं।

दुःखमय जीवन से मुक्ति के उपाय, भाग्य व कर्म में कौन श्रेष्ठ?, जगत् की वास्तविकता, संसार की असारता और मन की भूमिका, जीवस्वरूप, ईश्वर - ब्रह्म का स्वरूप, मृत्यु का रहस्य, बंधन एवं मोक्ष, मोक्ष प्राप्ति के उपाय, कर्मबंधन, जीवन्मुक्ति इत्यादि इन प्रश्नों के समाधान रमणीय उपाख्यानों के माध्यम से सहज भाषा में प्रस्तुत करना योगवाशिष्ठ का वैशिष्ट्य है–

शास्त्रं सुबोधमेवेदं सालंकारविभूषितम् ।
काव्यं रसमयं चारुदृष्टान्तैः प्रतिपादितम् ।।
योवा., 2.18.33

अस्मिन्श्रुते मते ज्ञाते तपोध्यानजपादिकम् ।
मोक्षप्राप्तो नरस्येह न किंचिदुपयुज्यते ।
यो. वा., - 2.18.35

सर्वदुःखक्षयकरं परमाश्वासनं धियः ।
- 2.10.9

सुखदुःखक्षयकरं महानन्दैककारणम् ।।
- 2.10.7

य इदं शृणुयान्नित्यं तस्योदारचमत्कृतेः ।
बोधस्यापि परं बोधं बुद्धिरेति न संशयः ।
- 3.8.13

योगवाशिष्ठ के कथावाचक अध्यात्म जगत् के आत्मदर्शी महात्मा ही रहे हैं। जिनका उद्देश्य रहा जीवन के परमपुरुषार्थ मोक्ष के अभिलाषी साधकों का उपयुक्त मार्गदर्शन करना। अध्यात्म मार्ग के पथिक जिन प्रश्नों से उद्वेलित होते रहे हैं उनके समाधान परक व्याख्यान इस ग्रंथ की विषय-वस्तु हैं। दुःखमय जीवन से मुक्ति के उपाय, भाग्य व कर्म में कौन श्रेष्ठ?, जगत् की वास्तविकता, संसार की असारता और मन की भूमिका, जीवस्वरूप, ईश्वर - ब्रह्म का स्वरूप, मृत्यु का रहस्य, बंधन एवं मोक्ष, मोक्ष प्राप्ति के उपाय, कर्मबंधन, जीवन्मुक्ति इत्यादि इन प्रश्नों के समाधान रमणीय उपाख्यानों के माध्यम से सहज भाषा में प्रस्तुत करना योगवासिष्ठ का वैशिष्ट्य है।

अर्थात् यह शास्त्र सुबोध है। अलंकारों से विभूषित है। यह रसपूर्ण काव्य है जिसमें सिद्धांत सुन्दर दृष्टांतों द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिए इस ग्रंथ का श्रवण, मनन और निदिध्यासन कर लेने पर तप, ध्यान और जप आदि किसी साधन की आवश्यकता नहीं रहती। यह ग्रंथ सब दुःखों का क्षय करने वाला, बुद्धि को अत्यंत आश्वासन देने वाला, और महा आनंद प्राप्ति का एकमात्र साधन है। जो इसको नित्य श्रवण करता है उस प्रकाशमयी बुद्धि वाले को बोध से भी परे का बोध हो जाता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

अध्यात्म संबंधी प्रश्नों का समाधान

यह सर्वविदित है कि वैदिक काल से ही भारतीय समाज संसार की निस्सारता को समझता हुआ अध्यात्म संबंधी प्रश्नों से दो चार होता रहा है। उपनिषद् - साहित्य ने तत्कालीन समाज को पर्याप्त समाधान भी दिया। परंतु जैसे-जैसे भारतीय मानस नये-नये युगों में प्रविष्ट होता गया वही सनातन तत्त्वमीमांसा के प्रश्न बदलते संदर्भों में नये समाधान की अपेक्षा करने लगे। उस बौद्धिक मंथन का परिणाम था सांख्य-योग, पूर्वोत्तर मीमांसा, न्यायवैशेषिक, चार्वाक, बौद्ध, जैन जैसे विभिन्न दर्शनों का प्रकटीकरण ।

भारतीय संस्कृति के महान् नायक राम और महर्षि वशिष्ठ जिस अध्यात्म - शास्त्र के संवादी हों और जिसके महर्षि वाल्मीकि जैसे ग्रंथकार हों उसमें विगत् हजारों वर्षों से सतत् विकासशील अध्यात्म चिंतन का यथेष्ट समावेश स्वाभाविक ही था। इसीलिए भारतीय अध्यात्म ने अपना स्वरूप इस प्रकार परिभाषित किया–

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते । ।

योग वाशिष्ठ की अपरिहार्यता

भारतीय समाज के लिए इस ग्रंथरत्न की अपरिहार्यता, उद्धारक - सत्ता को समझने के लिए हमें भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करना चाहिए।

सहस्राब्दियों से प्रवाहमान भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण परंपरा में आठवीं सदी के बाद, सम्राट हर्ष के पश्चात् अवरोध आने लगे। जिसके बाद कुंठित भारतीय मानस उपाय कौशल की खोज करने लगा। उसने प्रकाशपुंज के रूप में आर्ष परंपरा के योगवाशिष्ठ की शरण ली। तभी तो काश्मीर में अभिनंद (9वीं सदी) 'योगवाशिष्ठसार' की प्रस्तुति की।

भारतीय समाज के आध्यात्मिक प्रश्नों को वेदांतदृष्टि से समाधान देने वाले तथा प्रस्थानत्रयी-उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं गीता को प्रमाण मानने वाले आचार्यों सर्वज्ञात्ममुनि (10वीं सदी) श्रीधरस्वामी (12वीं सदी) विद्यारण्य स्वामी (14वीं सदी), विज्ञानभिक्षु (16वीं सदी) मधुसूदन सरस्वती (16वीं सदी) के लिए अपनी कृतियों में प्रमाण-वचन के रूप में उद्धृत करने योग्य शास्त्र के रूप में योगवाशिष्ठ अपरिहार्य बन गया।

भारतीय समाज के लिए इस ग्रंथरत्न की अपरिहार्यता, उद्धारक - सत्ता को समझने के लिए हमें भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करना चाहिए। सहस्राब्दियों से प्रवाहमान भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण परंपरा में आठवीं सदी के बाद, सम्राट हर्ष के पश्चात् अवरोध आने लगे। जिसके बाद कुंठित भारतीय मानस उपाय कौशल की खोज करने लगा। उसने प्रकाशपुंज के रूप में आर्ष परंपरा के योगवाशिष्ठ की शरण ली। तभी तो काश्मीर में अभिनंद (9वीं सदी) 'योगवाशिष्ठसार' की प्रस्तुति की।

मध्यकाल के मुगल शासकों को यदि किसी हिंदू धर्म के अध्यात्म ग्रंथ ने आकर्षित किया तो वह योगवासिष्ठ ही था। अकबर, जहाँगीर और दाराशिकोह ने अपने राज्यकाल में इसके अनेक फारसी भाषा के अनुवाद एवं रूपांतरण तैयार करवाये। बीसवीं सदी में स्वतंत्रता आंदोलन की कालावधि में हम कह सकते हैं कि तिलक, गांधी, अरविंद ने भारतीय आध्यात्म के प्रतिनिधि ग्रंथ के रूप में श्रीमद्भगवद्गीता का पुरस्सरण किया। मगर 19वीं सदी के अंतिम चरण तक भारतीय मानस को सांत्वना देने वाला योगवाशिष्ठ ही भारत की सशक्त एवं समर्थ संत-परंपरा का कंठ-कलरव बना रहा ।

अंधकार युग' में समाज का प्रेरणा स्रोत

भारतीय इतिहास के अंधे युग (15वीं से 19वीं सदी तक) में समाज की उद्वेलनाओं को संबोधित करते हुए भक्ति आंदोलन ने इस शास्त्रशिरोमणि की शरण ली। बंगाल के महान् समाज सुधारक एवं वैष्णव भक्ति आंदोलन के प्रणेता चैतन्यदेव (16वीं सदी) से लेकर बाद के सभी वैष्णव आचार्यों ने इस अध्यात्म शास्त्र को अपने प्रचार का आधार बनाया। दक्षिण भारत में आत्मबोधेन्द्र सरस्वती (17वीं सदी) ने पहली प्रामाणिक टीका ('वाशिष्ठरामायण तात्पर्य टीका) की रचना की। उत्तर बंगाल में अभीन्द्र तर्कवागीश (1598) ने 92 पद्यों में 'लघुयोगवाशिष्ठ' अथवा 'मोक्षोपाय' की रचना की।

मध्यकाल के मुगल शासकों को यदि किसी हिंदू धर्म के अध्यात्म ग्रंथ ने आकर्षित किया तो वह योगवासिष्ठ ही था। अकबर, जहाँगीर और दाराशिकोह ने अपने राज्यकाल में इसके अनेक फारसी भाषा के अनुवाद एवं रूपांतरण तैयार करवाये।

स्वतंत्रता आंदोलन में मार्गदर्शक

बीसवीं सदी में स्वतंत्रता आंदोलन की कालावधि में हम कह सकते हैं कि तिलक, गांधी, अरविंद ने भारतीय आध्यात्म के प्रतिनिधि ग्रंथ के रूप में श्रीमद्भगवद्गीता का पुरस्सरण किया। मगर 19वीं सदी के अंतिम चरण तक भारतीय मानस को सांत्वना देने वाला योगवाशिष्ठ ही भारत की सशक्त एवं समर्थ संत-परंपरा का कंठ-कलरव बना रहा ।

जब हम 16वीं सदी से आज तक के सगुण एवं निर्गुण परंपरा के महान भक्तों, संतों के देशज भाषा में प्रणीत साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि वे सभी योगवाशिष्ठ के कथ्य को नित्यनूतन शैली में गाकर भारतीय समाज को उद्बोधित करते रहे हैं। आधुनिक युग में भारतीय अध्यात्म के उन्नायक स्वामी रामतीर्थ ने योगवाशिष्ठ के विषय में कितना सम्यक् कहा है–

'भारत की सर्वोत्तम पुस्तकों में से एक और मेरे मतानुसार तो संसार की सभी पुस्तकों में अद्भुदतम पुस्तक योगवाशिष्ठ है। यह असंभव है कि कोई इस ग्रंथ का अध्ययन कर ले और उसको ब्रह्मभावना न हो और वह सबके साथ एकता का अनुभव न करे।'

लेखक महर्षि वाल्मिकी संस्कृत विश्वविद्यालय, कैथल (हरियाणा) के कुलपति हैं।

समकालीन संस्कृति एक सामयिक पराधीनता की उपज है। क्षणिक अथवा उपभोक्ता संस्कृति के अनुपात में अधिक स्वतंत्र रहने वाली समकालीन संस्कृति क्षेत्रवाद और राज्यव्यवस्था के दबाव में विकसित होती है। इसकी युगीन उपयोगिता बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह एक और बाजार को और दूसरी ओर शासन को उत्साहित या हतोत्साहित करने में सफल होती है। यह इतिहास के प्रचलित ढाँचे के अनुसार उदित और अस्त होती है। समकालीन संस्कृति-सृजन में युग बोध के तत्त्व बड़े मुखर होते हैं। घोषित रूप से भारतीय बौद्धिक जगत् में इस सृजन के ढाँचे को प्रगतिवाद के बाद स्थापित हुआ देखा जाता है, जबकि यह प्रत्येक युग में युगधर्म के अनुसार सक्रिय रही है। इसका स्वतंत्र अस्तित्व नगण्य होता है। यह भारतीय काल बोध के मापक पर शाश्वत संस्कृति के नीचे और उपभोक्ता संस्कृति के ऊपर अधिष्ठित मानी जा सकती है। प्रस्तुत लेख में समकालीन संस्कृति की प्रकृति और प्रवृति पर विस्तार से चर्चा कर रहें हैं विद्वान लेखक डॉ. प्रमोद कुमार दुबे–

डॉ. प्रमोद कुमार दूबे

समकालीन संस्कृति की रूपरेखा

जिस प्रकार उपभोक्ता संस्कृति कही जाती है, विचार के स्तर पर प्रयोजनवती (स्वार्थी), गति के स्तर पर चंचल और गुण के स्तर पर तामसिक मानी गयी है। समकालीन श्रेणी की संस्कृति को युगीन माना जाता है। यह राजसत्ता के साधन से पोषित होकर अथवा उसका विरोध करते हुए उत्पन्न होती है इसका प्रमुख केंद्र राजसत्ता है। यह युग में घटित विडंबनाओं और सुविधाओं को महत्त्व देती है। इसलिए उपभोक्ता संस्कृति भी इसके क्षेत्र में क्रिया-प्रतिक्रिया के विषय बनकर आ जुड़ती है। इसका सबसे अद्‌भुत लक्षण यह है कि यह शाश्वत संस्कृति को संदिग्धता से देखती है, आचरण में यह संस्कृति श्रेणी उपभोक्ता संस्कृति के उत्पादनों को अधिक महत्त्व देती है पर आदर्श की बातों में शाश्वत संस्कृति के मानदंडों का उपयोग करती है। इसके चरित्र का दुहरापन पद और अर्थ को प्रत्यक्षतः साथ लेने में सफल बनता है। यह गुण की दृष्टि से राजस है।

समकालीन साहित्य की स्थापना के साथ हिंदी साहित्य में सामाजिक राजनीतिक और अन्य व्यवस्थापरक प्रवृतियाँ की बाढ़-सी आ गयी। पत्रकारिता इसका प्रधान उपजीव्य हो गई। राजनीतिक सिद्धांतों के आधार पर परिवर्तन की माँग और उसका संभावित सुख इस साहित्य का प्रधान रस हो गया। किसी राजनीतिक सिद्धांत में आस्था रखने वाले

साहित्य को समकालीन मानना चाहिए और इस कोटि के सृजन को शाश्वत होने का दावा नहीं करना चाहिए।

रूस में कम्युनिस्ट शासन के दिनों में भारी मात्रा में साहित्य उत्पादित किया गया था। विचार प्रचार के अभियान को विश्व मानस के परिवर्तन के लिए विश्व की अन्य भाषा संस्कृतियों के क्षेत्र में भी चलाया गया था। भारत में वैचारिक परिवर्तन के लिए बड़ी मजबूती से काम किए गए काँग्रेसी सरकार ने इस अभियान को सफल बनाने में रूस का हाथ मजबूत किया। बहुत बड़ी संख्या में हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्यकार रूसी मेहमान बनाए गए, उन्हें शिक्षा-दीक्षा से संपन्न किया गया इन साहित्यकारों की वंश बेलि भारत में समकालीन साहित्य की खेती करती रही है। उन्हें पूरा विश्वास है कि उन्होंने शाश्वत साहित्य संस्कृति का खात्मा कर दिया, इस नाम की साहित्य संस्कृति फिर नहीं अवतरित होगी। किंतु उन्हें कुछ चेहरे नहीं भूले होंगे, जो उनके दायरे से निकलकर मुक्त हवा में सांस लेते श्रेष्ट कवियों के चेहरे थे, जिनका आगमन और बहिर्गमन उनके सुख-दुःख के कारण बने थे। आलोचकों ने लाख प्रयास किए, इन बड़े नामों को अपने ढांचे में कसे रखें लेकिन वे विफल हुए और एक दिन जब रूस की राज्य व्यवस्था ध्वस्त हो गई, लेनिन जैसे कद्दावर नेता की विशाल मूर्ति पर रूस की जनता लिख-पोतने लगी। विश्व के आलोचकों-विचारकों ने स्वीकार किया कि रूस का यह परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया के अनुसार हुआ। मैं नहीं जानता कि किसी विचारक ने इस व्यवस्था ध्वंस को भारतीय काल बोध के मानदंड पर तौलकर देखा या नहीं? यदि देखा गया होता तो राष्ट्रीय साहित्य अकादमियों में भी बहसें हुई होती। शाश्वतकाल बोध से टकराकर समकालीनता की अवधारणा अपना उचित स्थान ले चुकी होती। वह सर्वोपरि पद का दावा छोड़ चुकी होती। साहित्य अकादमी से निकलने वाली कला संस्कृति और साहित्य की पत्रिकाएं अपने नाम के आगें से समकालीन शब्द मिटा चुकी होती। पर ऐसा नहीं हुआ। क्योंकि उन्हें दिक् और काल का महत्त्वपूर्ण भारतीय ज्ञान नहीं रहा है।

भारतीय शास्त्र उनके लिए व्यर्थ हो चुके हैं। भारतीय काल बोध के मापक पर समकालीन को युगीन प्रवृति कहा जाएगा। राजा युगधर्म होता है इस कथन के आधार पर कहना उचित होगा कि राज्यव्यवस्था के सिद्धांत पर सृजित के अंग-प्रत्यंग भी युगीन होते हैं। एक युग के अस्त होते ही राजा और राज्यवस्था अस्त हो जाते है. युगीन अथवा समकालीन संस्कृतियाँ भी मिट जाती। जिसका उदाहरण सोवियत संघ रूस में दिखाई दिया। भारत के इतिहास में भी युग के अस्त होने से युगीन संस्कृतियाँ ध्वस्त हुई, उनके भग्नावशेष कालक्रम के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। यदि समकालीनता को ही अंतिम अथवा शीर्ष विकास की प्रतिष्ठा दी जाएगी। शाश्वत का अर्थ लोकमानस से समाप्त हो जाएगा और तब भारतीय संस्कृति के शाश्वत या सनातन होने की घोषणा बंद करनी होगी। परंतु भारत में यह कार्य तब तक नहीं हो सकता जब तक शाश्वत कालधर्म में हमारे तपस्वियों की सक्रिया भूमिका बनी रहेगी, सामयिक लाभ लोभ से दूर रहकर ध्येय-निष्ठा को प्रतिष्ठित करने वाले व्यक्ति बने रहेंगे।

भारतीय काल बोध के मापक पर समकालीन को युगीन प्रवृति कहा जाएगा। राजा युगधर्म होता है। इस कथन के आधार पर कहना उचित होगा कि राज्यव्यवस्था के सिद्धांत पर सृजित के अंग-प्रत्यंग भी युगीन होते। एक युग के अस्त होते ही राजा और राज्यवस्था अस्त हो जाते हैं। युगीन अथवा समकालीन संस्कृतियाँ भी मिट जाती हैं, जिसका उदाहरण सोवियत रूस में दिखाई दिया।

समकालीनता राज्यव्यवस्था के प्रभाव से उत्पादित होने वाली प्रवृति है। इसमें पद और अर्थ के प्रलोभन और सफलताओं की आकांक्षाएँ झुक-झुक सलाम करती दिखाई है। इस सलामी के कारण परिवर्तनकारी मूल्यदान दृष्टिकोणों को सलामत रखना कठिन हो जाता है, संस्कृति के सृजन की चेतना बाधित होती है और यह सशंकित एवं तकनीकी हो जाती है। इस धारणा में समय के साधन पर पाँव जमाए खड़े देवताओं की पूजा आवश्यक होती है। इस प्रकार की सफलताएँ युग को समाप्त होते ही कूड़ेदानी में फेंकनी पड़ती है।

काँग्रेस पार्टी जब सत्ता में थी, वह कुछ दिनों तक गांधीवाद को प्रश्रय देती रही, गांधीवादी साहित्यकार सांसद बनाए जाते रहे उनके साहित्य को प्रकाशकों ने लाभकारी समझ कर छापा भी। लेकिन गांधी का स्वदेशी आग्रह काँग्रेसियों के लिए कष्टदायी था। क्योंकि डॉमिनी स्टेट इस आग्रह से आहत होता था। 'डोमिनी राज' (डोमीनियन स्टेस) एक तोहफे का नाम है, जिसे माउंट बैटन ने बितानी साम्राज्य से प्राप्त कर अपनी पत्नी एडविना के हाथों जवाहरलाल नेहरू को समर्पित करवाया था। इसी का नाम इंडिया है। यह भारत से अलग की चीज रही है। यह कभी-कभी दिखाई देती है। यह सच्चाई की अंतरीला नदी हर समय नहीं दिखती। इससे टकराने वाली का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है।

गांधीवाद धीरे-धीरे दर किनार हुआ, विनोबा के आंदोलन और सर्वोदय की क्रांति भी प्यार भरी फूंक से उड़ा दी गयी है और जहाँ कहीं भी स्वराज्य की भूमिकाएँ संभावित थी, उन्हें मधुर नकारों से समाप्त किया गया। हिंदी-सेवी, स्वदेशी प्रेमी भारत-भक्त लोग अपनी हृदय अभिलाषाओं की घोट को भीतर-भीतर सहते रहे। इन अभिलाषाओं के शुद्ध रूप में से कुछ छोड़ और कुछ जोड़ कर बनी हुई भजनान्दी समाजवादी चिंतकों की भूमिकाएँ भी फलित नहीं हो सकी। नरेद्र देव और राममनोहर लोहिया जैसे राष्ट्रवादी विचारकों के कुल में बचे-खुचे लोग निराश हुए काँग्रेस शासन के प्रत्येक चरणों में इन समकालीन विचारकों के क्रमशः ह्रास दिखाई देते हैं। पर इसी समकालीन परिदृश्य में कम्युनिस्टों की जड़ में खाद पानी क्यों डाला गया? कारण स्पष्ट है कि तत्कालीन राजनीतिक शक्ति को कोई विदेशी ताकत विवश कर रही थी कि वह स्वदेशी चेतना को बलशाली न बनाए अन्यथा भारत में चल रही उसकी लाभकारी गतिविधियाँ चाहे यह उपभोक्ता सामग्रियों के उत्पादन और बिक्री से आर्थिक लाभ देने वाली हो अथवा भाषा-संस्कृति शिक्षा या धर्मांतरण संबंधी हो मुश्किल में पड़ सकती हैं।

समकालीन परिदृश्य में कम्युनिस्टों की जड़ में खाद पानी क्यों डाला गया? कारण स्पष्ट है कि तत्कालीन राजनीतिक शक्ति को कोई विदेशी ताकत विवश कर रही थी कि वह स्वदेशी चेतना को बलशाली न बनाए अन्यथा भारत में चल रही उसकी लाभकारी गतिविधियाँ चाहे यह उपभोक्ता सामग्रियों के उत्पादन और बिक्री से आर्थिक लाभ देने वाली हो अथवा भाषा-संस्कृति शिक्षा या धर्मांतरण संबंधी हो मुश्किल में पड़ सकती हैं।

ऐसी परिस्थिति में विदेशी विचारधारा को प्रश्रय मिलना सहज था। काँग्रेसी कर्णधारों ने ब्रितानी औद्योगिक क्रांति का रास्ता अपनाया ही था उन्होंने दुनिया के मजदूरों को भी एकजुट होने का नारा बुलंद कर दिया। कितनी हास्यास्पद मानसिकता है देखिए, स्वदेशी भावधारा को मारने के लिए दो प्रकार के विदेशी दृष्टिकोणों को खड़ा किया गया। इस दिमागी दिवालियापन का नतीजा यह हुआ कि भारतीय समकालीन सांस्कृतिक चेतना के विकास की निजी क्रमबद्धता खंडित हुई और साहित्य-कला के जगत् में विदेशी लेखकों-चित्रकारों, मूर्तिकारों, फिल्मकारों का

जमाव हुआ। जो स्वदेशी संस्कृति को समकालीनता को विकसित करने में बाधाएँ उत्पन्न करते रहे हैं। इन विदेशी कला-साहित्य की कृतियों के तर्ज पर बहुत-से अनुकरणशील उत्पादन हमारे सामने आते हैं। जिन्हें एक नए किस्म के रूप में जनमानस ने स्वीकारा है। ये संकरित अन्न-फल इत्यादि की तरह कुस्वादु और अस्वरथकर है। इनके दुष्परिणामों को हमारा समाज अनेक प्रकार से भोग रहा है। ध्यान देने की बात यह भी है कि नयी पीढ़ी के युवाओं में संक्रमित संस्कृति के उत्पादनों की प्रतिक्रिया नहीं के बराबर है। प्रतिक्रिया होती है उस व्यक्ति में जिसका मानसिक विकास अपनी धरती के रस से हुआ है। हम इसे पीढ़ियों की मानसिकता का अंतर मान लेते हैं। पर यह मान्यता प्रत्येक संदर्भों में उपयुक्त नहीं बैठती।

नयी पीढ़ी के युवाओं में संक्रमित संस्कृति के उत्पादनों की प्रतिक्रिया नहीं के बराबर है। प्रतिक्रिया होती है उस व्यक्ति में जिसका मानसिक विकास अपनी धरती के रस से हुआ है। हम इसे पीढ़ियों की मानसिकता का अंतर मान लेते हैं। पर यह मान्यता प्रत्येक संदर्भों में उपयुक्त नहीं बैठती। समकालीन संस्कृति अपने समय की क्षणिक अर्थात् उपभोक्ता संस्कृति को गहराई तक प्रभावित करती है।

समकालीन संस्कृति अपने समय की क्षणिक अर्थात् उपभोक्ता संस्कृति को गहराई तक प्रभावित करती है, बाजार की वस्तुएँ उपभोक्ता की रूचि को परखती है। उसकी अनुरूपता में ढ़लती हैं मोका मिलने पर बदलाव भी ला देती हैं। इसके लिए हम नवाबों के समय को याद करें। नवाबों को रूचि ईत्र में थी। ईत्र के कारोबार अच्छे चलते थे। उनकी रूचि गुडगुडे में थी, गुडगुडे पर किस्म-किस्म की मीनाकारी होती थी। वो लोग विलास प्रिय थे। एक से एक विलास की वस्तुएँ बाजार उत्पादित कर रहा था। भाषा के स्तर पर उनके तमीज तहजीब के जुमले उत्पादित हुए थे। दिन बीत गया, बची खुची एठने ढ़ोई जाती रही, वह भी जल बुझ गई। लेकिन देह की सत्ता से सूक्ष्म और व्यापक सत्ता मानस की होती है। दिमागी दुनिया में बीते हुए दिनों की याद चलती रहती है, मुगले आजम, जहाँ आरा, ताजमहल, लैला मजनू आदि विषय फिल्मों में दौड़ते रहे। कुछ दिन पहले तक इनका बाजार था। अब वह बाजार बालीवुड के उद्योग में पिट चुका है। जब कोई निर्माता हठपूर्वक इन काल कवलित प्रसंगों को फिल्म में उठाने का प्रयास करता है फिल्म नहीं चल पाती। कुछ लोगों ने मुगलिया शानोशौकत और दीनो ईमान को कायम करने के छिपे रूस्तम प्रयास किए, मसलन लाल बादशाह, गुलाम मुस्तफा इत्यादि फिल्मों के जरिए लेकिन ये लोग व्यवसायिकता की दृष्टि से सफल नहीं हुए। भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत फिल्मकार गुलजार ने 'न्यू देहली टाइम्स' फिल्म की पटकथा लिखी थी उसमें उन्होंने कुछ प्रयोग किए थे। सिर्फ एक प्रयोग उद्धृत करना इस प्रसंग में उचित है– उन्होंने इस फिल्म की कास्टिंग में सुनाया, दिल्ली की ये मस्जिदें दर्शक के सामने मस्जिदों के दृश्य आए। मुगलिया दरबार में जिस बुलंद या पुरजोर आवाज में कशिशंभर कर शाहंशाह के आने की घोषणा होती थी, उसी आवाज को बरकरार रखते हुए गुलजार ने आगे फरमाया कि ये मस्जिदें कभी शिक्षा के केंद्र हुआ करती थी। मौलवी साहब पाकिस्तान चले गए तब से ये सूनी पड़ी हैं। गुलजार साहब का दुःख कितना आला है। आप अनुभव कर सकते हैं।

यही है समकालीन सांस्कृतिक चेतना को मारने का प्रयास। यह मारक प्रयास बहुत चालाक होकर भी जन मानस में संप्रेषित नहीं होते। कभी-कभी ये प्रयास उपहास का कारण बन जाते हैं। इसे इतिहास को गतिशीलता का विरोध कहा जाता है। मार्क्सवादी साहित्यकार आलोचक अक्सर इस वैचारिक स्थापना को शक्तिशाली हथियार

के रूप में उपयोग करते हैं। यह तोप ये लोग शाश्वत काल की अवधारणा पर भी छोड़ते हैं। इस भोलेपन का कारण यह है कि मार्क्समार्गी शाश्वतकाल से अपरिचित रहे हैं। भारतीय कालबोध की उन्हें जानकारी नहीं है। इनकी बुद्धि समकालीन तक ही जाती है। यहीं तक जानी भी चाहिए क्योंकि लोक में काल की प्रभावशाली और उपलब्धिदायिनी अभिव्यक्ति समकालीनता में ही होती है।

राज्यव्यवस्था के तंत्रों की सीमा में ही पद और अर्थ सृजित होते हैं। इनकी प्राप्ति के लिए सहयोगी या विरोधी संस्कृति कर्म अर्थात् नाटक नाच-गान कविता-कहानी (बतौर जिंदाबाद या मुर्दाबाद) लिखना, छपवाना और गला फाड़कर सुनाना फलवती होता है। यह साहित्य अक्सर राजनीतिक पार्टी के विचारों तक सीमित होता है। समकालीनता का झंडा ठीक ढंग से नहीं ढ़ो रहा जो साहित्यकार वैचारिक स्वतंत्रता के कारण कुछ अलग राग अलापता है, राज्यव्यवस्था की समकालीन शक्तियाँ उस संस्कृतिकर्मी का गला दबा देती हैं। सुप्रसिद्ध कवि अब्दुल रहीम खानखाना को जनपक्षधरता के कारण बहुत यातना दी गयी थी। इसके बावजूद कि वह मुगलिया सल्तनत के एक वफादार सिपाही थे।

इन प्रवृत्तियों से यह सिद्ध होता है कि समकालीन संस्कृति एक सामयिक पराधीनता की उपज है। जेस्पर्स जैसे संस्कृति-विचारक ने संस्कृति के समकालीन रूप पर ही विचार करते हुए कहा था कि जब संस्कृति का सामुदायिक सार तत्त्व पूर्ण रूप से विकसित होता है, वह मनुष्य के आंतरिकता को संपन्न बनाता है। जेस्पर्स के पास मनुष्य के अंतःकरण में अवस्थित महाकाल की अभिव्यक्ति और लोकभूमिका से उत्पादित संस्कृति का ज्ञान नहीं था। सामुदायिक सार तत्त्व के विकास में राजकीय सुविधाओं की अपेक्षाएं आवश्यक होती है। लेकिन शाश्वत कालिक संस्कृति का तेज राज का ताज भेदकर खड़ा हो जाता है। कम्युनिस्ट चिंतक राज का ताज भेदन करने वाले भारत के तपस्वियों के तेज से अपरिचत होकर ही कविता करने, गाना गाने, नाटक, नौटंकी करने वालों को संस्कृतिकर्मी कहते हैं। चूंकि ये प्राणी स्वयं विचारक नहीं होते, विचार के संवाहक होते हैं, इनको उपयोगिता की दृष्टि से देखा जाता है, ये लोग मजदूर किस्म के होते हैं। इसमें कुछ वास्तविकता भी है। इस प्रकार के प्राणी भारत में चारण-भांट की श्रेणी में गिने जाते रहे हैं। चूंकि यह देश तुलसी, कबीर, नानक , बाल्मीकि का है। हमें मार्क्समार्गियों के जुमले का प्रयोग सोंच, समझ करना होगा–निराला या प्रसाद को संस्कृतिकर्मी कहना मूर्खता होने के कारण दंड भोग का रसास्वादन भी करा सकता है।

क्षणिक अथवा उपभोक्ता संस्कृति के अनुपात में अधिक स्वतंत्र रहने वाली समकालीन संस्कृति क्षेत्रवाद और राज्यव्यवस्था के दबाव में विकसित होती है। इसकी युगीन उपयोगिता बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह एक ओर बाजार को और दूसरी ओर शासन को उत्साहित या हतोत्साहित करने में सफल होती है। यह इतिहास के प्रचलित ढांचे के अनुसार उदित और अस्त होती है। समकालीन संस्कृति-सृजन में युग बोध के तत्त्व बड़े मुखर होते हैं। घोषित रूप से भारतीय बौद्धिक जगत् में इस सृजन के ढांचे को प्रगतिवाद के बाद स्थापित हुआ देखा जाता है। जबकि यह प्रत्येक युग में युगधर्म के अनुसार सक्रिय रही है। इसका स्वतंत्र अस्तित्व नगण्य होता है। यह भारतीय काल बोध के मापक पर शाश्वत संस्कृति के नीचे और उपभोक्ता संस्कृति के ऊपर अधिष्ठित मानी जा सकती है।

लेखक एनसीआरटी दिल्ली, के पूर्व प्रोफेसर हैं।

पं. दीनदयाल उपाध्याय आधुनिक भारत के ऐसे मौलिक चिंतक, विचारक, दार्शनिक, लेखक, राजनेता एवं सामाजिक कार्यकर्ता हुए हैं, जिनके चिंतन ने भारत ही नहीं, संपूर्ण विश्व की अनेक ज्वलंत समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया है। हालाँकि, दीनदयाल जी का चिंतन भारतीय सनातन चिंतन धारा का ही विस्तार है, परंतु उसकी युगानुकूल व्याख्या ने विश्वभर के चिंतकों और विचारकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। एक लोक संचारक के रूप में दीन दयाल उपाध्याय का एक विशिष्ट महत्त्व है। उनके संचार का मूल उद्देश्य देश, समाज और राष्ट्र का उत्थान था। उनके संचार में जनकल्याण और राष्ट्रोत्थान सर्वोपरि था। व्यक्तिगत हित तो उन्होंने अपने जीवन में कभी सोचा ही नहीं। पूरा भारत उनका परिवार था। इसलिए उन्होंने सबके कल्याण की बात की। उनके संचार का ध्येय समाज को एक राष्ट्रीय दृष्टि प्रदान करना था। वे निर्विवाद रूप से एक लोक संचारक थे और अपने संचार में उन्होंने भारत की प्राचीन संचार परंपरा की ही निर्वाह किया। अरस्तु ने संचारक के लिए जैसे सद्गुणी होने की कल्पना की दीनदयाल जी वैसे ही सद्गुणी थे। उन्होंने समाज में दुर्गुण का नहीं सद्गुण का, असत्य का नहीं सत्य का, अंधकार का नहीं प्रकाश का ज्ञान, अज्ञान का नहीं ज्ञान का, अविद्या का नहीं विद्या का संचार किया। उनके लोक संचारक पक्ष पर 'मंगल विमर्श' में विस्तार से एक लेखमाला में चर्चा की जाएगी। प्रस्तुत है इस लेखमाला का प्रथम भाग –

आकाशदीप जरयाल, प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

लोक संचारक दीनदयाल उपाध्याय

एकात्म मानव दर्शन एवं अंत्योदय जैसी कालजयी संकल्पनाओं के प्रणेता और जनसंघ के शीर्ष नेता रहे पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक चिंतन पर गत् कुछ वर्षों के दौरान अकादमिक जगत् में थोड़-बहुत अध्ययन हुआ है, परंतु उनके लोक संचारक पक्ष पर नहीं के बराबर चर्चा हुई है। संचारक पक्ष पर कभी-कभार जो लेख मीडिया में प्रकाशित होता है, वह मुख्यतः 'राष्ट्रधर्म', 'पांचजन्य'और 'स्वदेश' को आरंभ करने में उनके योगदान और अँग्रेजी साप्ताहिक 'ऑर्गनाइजर' में प्रकाशित उनके स्तंभ 'पॉलिटिकल डायरी' और हिंदी साप्ताहिक 'पांचजन्य'में प्रकाशित 'विचार-वीथी' की चर्चा तक ही सीमित रहता है। दीनदयाल उपाध्याय के संचार कौशल को समझने के लिए आवश्यक है कि उनके द्वारा एक राजनेता के रूप में दिए गए भाषणों, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रशिक्षण वर्गों में दिए गए बौद्धिकों, विभिन्न लोगों को लिखे गए पत्रों, मीडिया को जारी किए गए प्रेस वक्तव्यों, जनसामान्य और कार्यकर्ताओं से अनौपचारिक बातचीत, समाचार-पत्रों में लिखे गए स्तंभों, पुस्तकों की विषयवस्तु आदि का संपूर्णता में अध्ययन

किया जाए। साथ ही वर्तमान संचार विशेषज्ञों से यह समझने की कोशिश की जाए कि वे दीनदयाल उपाध्याय के संचार कौशल को किस दृष्टि से देखते हैं। लेखक ने इस विषय पर गत् चार वर्षों के दौरान गहन शोध किया है, जिसका निष्कर्ष है कि दीनदयाल उपाध्याय एक प्रभावशाली संचारक थे और उनकी बात सीधे श्रोता अथवा पाठक के हृदय में घर कर जाती थी। उस संचार कौशल को एक लेख में समेटना संभव नहीं है, इसलिए इसे लेखमाला के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा। लेखमाला के प्रथम भाग में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि दीनदयाल उपाध्याय एक कुशल लोक संचारक थे। प्रस्तुत है लेखमाला का प्रथम भाग–

स्वतंत्र भारत के अकादमिक जगत् द्वारा 1977 तक दीन दयाल उपाध्याय के चिंतन पर इसलिए ध्यान नहीं दिया गया, क्योंकि उनके चिंतन का अनुसरण करने वाला राजनीतिक दल सत्ता में नहीं आया था। 1977 के बाद केंद्र में जनता पार्टी की सरकार बनने और बाद में कुछ राज्यों में भाजपा के नेतृत्व वाली सरकारों के गठन के बाद उनके राजनीतिक चिंतन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, आर्थिक चिंतन, अंत्योदय आदि पर कुछ चर्चा हुई ।

प्रस्तावना

पंडित दीनदयाल उपाध्याय आधुनिक भारत के ऐसे मौलिक चिंतक, विचारक, दार्शनिक, लेखक, राजनेता एवं सामाजिक कार्यकर्ता हुए हैं, जिनके चिंतन ने भारत ही नहीं, संपूर्ण विश्व की अनेक ज्वलंत समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया है। हालाँकि, दीनदयाल जी का चिंतन भारतीय सनातन चिंतन धारा का ही विस्तार है, परंतु उसकी युगानुकूल व्याख्या ने विश्वभर के चिंतकों और विचारकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। स्वतंत्र भारत के अकादमिक जगत् द्वारा 1977 तक उनके चिंतन पर इसलिए गंभीरता से ध्यान नहीं दिया गया, क्योंकि उनके चिंतन का अनुसरण करने वाला राजनीतिक दल केंद्र और राज्यों में सत्ता में नहीं आया था। 1977 के बाद केंद्र में जनता पार्टी की सरकार बनने और तत्पश्चात् कुछ राज्यों में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकारों के गठन के बाद उनके राजनीतिक चिंतन, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, आर्थिक चिंतन, अंत्योदय आदि पर तो अकादमिक जगत् में कुछ चर्चा और शोध कार्य हुआ, परंतु उनके संचारक पक्ष पर न तो चर्चा हुई और न ही शोध कार्य। अभी भी जो चर्चा हो रही है, वह वर्ष 2014 के बाद तब शुरू हुई जब केंद्र में दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन का अनुसरण करने वाली भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता में आई और वर्ष 2019 में उसकी पहले से भी अधिक बहुमत के साथ सत्ता में वापसी हुई। वर्ष 2014 के बाद देश के कुछ विश्वविद्यालयों में दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन पर शोध कार्य आरंभ हुआ है। अनेक विश्वविद्यालयों में उनके नाम से शोध पीठ भी स्थापित हुई, जहाँ शोधार्थी दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन के विविध आयामों पर अध्ययन और शोध कार्य कर रहे हैं। कुछ शिक्षा संस्थानों में दीनदयाल जी के विचारों पर स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी आरंभ हुए हैं।

लोक संचारक का अर्थ

दीनदयाल उपाध्याय ऐसे लोक संचारक थे, जिन्होंने अपने विचारों का संचार विभिन्न प्रसार माध्यमों से किया। वैसे 'लोक' शब्द का अर्थ है 'देखने वाला', लेकिन वैदिक साहित्य से लेकर वर्तमान समय तक 'लोक' शब्द का प्रयोग जनसामान्य के लिए हुआ है। 'लोक' शब्द से अभिप्राय उस संपूर्ण जन समुदाय से है जो किसी देश में निवास करता है। हजारी प्रसाद

द्विवेदी के अनुसार, 'लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गाँव में फैली हुई वह समस्त जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है' (शर्मा, 2020)।

संचार एक सतत प्रक्रिया है, जिसमें मुख्य रूप से छह तत्त्व एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए आपस में क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। ये छह तत्त्व हैं–संचारक, संदेश, माध्यम, प्राप्तकर्ता, प्रतिपुष्टि और शोर। संचार प्रक्रिया में संचारक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। संचारक संदेश प्राप्तकर्ता की समस्याओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप संदेश का निर्माण करता है। यानी संचारक संचार प्रक्रिया की शुरूआत करता है। इसे कम्युनिकेटर, सेंडर, श्रोत, संप्रेषक, एनकोडर, संवादक इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। संप्रेषित संदेश का प्राप्तकर्ता पर क्या और कितना प्रभाव होगा, यह संचारक की संप्रेषण कला और ज्ञान के स्तर पर निर्भर करता है(रणजीत, 2013)। ग्रीक दार्शनिक अरस्तु ने सद्गुणी व्यक्ति को प्रभावी संचारक (संप्रेषक) माना है। अरस्तु की बात मानें तो प्रभावी संचारक वही है जो अपने कार्य, विचार या चेतना से समाज में परिवर्तन का वाहक बने। अरस्तु के अनुसार ऐसे व्यक्ति का सद्गुणी होना आवश्यक है। यानी समाज में संचार तो हो लेकिन सद्गुण का, दुर्गुण का नहीं, सत्य का असत्य का नहीं, आलोक का तिमिर का नहीं, ज्ञान का अज्ञान का नहीं, विद्या का अविद्या का नहीं। जब दीनदयाल उपाध्याय के संचार पर दृष्टि डालते हैं तो एक संचारक में ये सब जो गुण ऊपर बताये गए हैं वे सभी उनमें मिलते हैं।

दिव्य चेतना, असाधारण आत्मबल और दृढ इच्छाशक्ति वाले व्यक्ति ही महान् संचारक होते हैं। उनके संचार में पूरे विश्व को बदलने की शक्ति और संदेश होता है। ये संचारक किसी महान् उद्देश्य और कार्य के लिए जन्म लेते हैं और दुनिया को नया और कई बार समय से आगे का विचार देते हैं। उनके शब्दों में सहज, सरल बोध गम्यता के साथ असाधारण शक्ति , गहन अर्थ और गंभीरता तथा घनीभूत चेतना होती है, जो मानव मात्र को न सिर्फआंदोलित करती है, बल्कि उसे एक सकारात्मक दिशा देने का काम भी करती है। इन अर्थों में महान् विभूतियों का संचार केवल अपनी बात दूसरे तक पहुँचाने तक सीमित न रहकर समूची विश्व व्यवस्था को बदलने के लिए एक अजस्र ऊर्जा स्रोत का काम करता है, लेकिन यह आत्मिक शक्ति कठिन साधना, निरपेक्ष भावना, निर्मल आचरण, अडिग संकल्प और दिव्य स्वप्न से ही प्राप्त होती है।

दिव्य चेतना, असाधारण आत्मबल और दृढ इच्छाशक्ति वाले व्यक्ति ही महान् संचारक होते हैं। उनके संचार में पूरे विश्व को बदलने की शक्ति और संदेश होता है। ये संचारक किसी महान् उद्देश्य और कार्य के लिए जन्म लेते हैंऔर दुनिया को नया और कई बार समय से आगे का विचार देते हैं। उनके शब्दों में सहज, सरल बोध गम्यता के साथ असाधारण शक्ति , गहन अर्थ और गंभीरता तथा घनीभूत चेतना होती है।

भारतीय संस्कृति में संचार की महत्ता को काफी पहले से स्वीकार किया गया है। 'सूचना का साधारणीकरण अर्थात् संचार' यह सटीक परिभाषा भारतीय ही है। महापुरुषों और संतों ने वैदिकज्ञान का साधारणीकरण कर इसे जिस तरह करोड़ों लोगों तक पहुँचाया है वह संचार का अनूठा उदाहरण है। श्रीमद्भगवदगीता एवं महाभारत में संजय-दृष्टि संचार और संवाद के आदर्श प्रतीक हैं। हमारे यहाँ वेदों में संचार के संदेश तत्व का विस्तृत विवेचन है। ऋग्वेद में ज्ञान के प्रचार का वर्णन करते हुए कहा गया है– 'भानुमद्धिः अर्केः सूर्यः न',अर्थात् तेजस्वी किरणों से

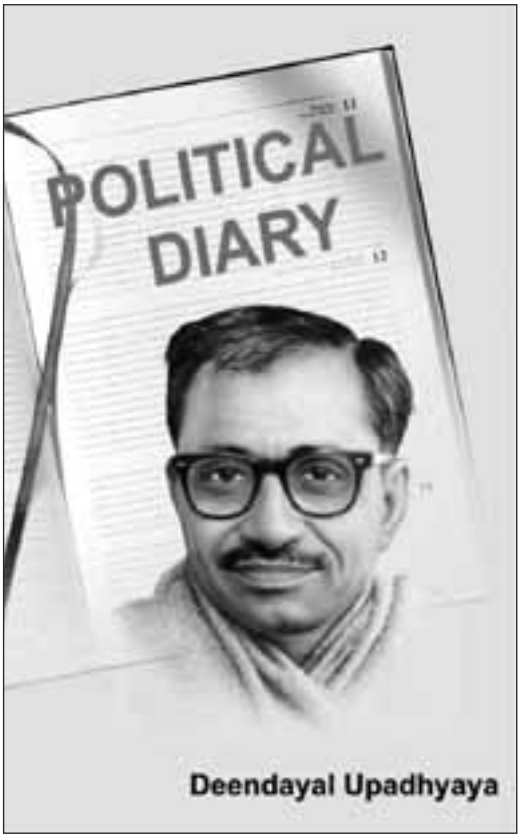

जिस तरह सूर्य का प्रकाश फैलता है, उसी प्रकार मनुष्य ज्ञान को फैलाए। यह ज्ञान सत्य पर आधारित होना चाहिए। संचार के मूल में भी सत्य का संप्रेषण और उसकी जिज्ञासा ही है। व्यष्टि से लेकर समष्टि तक इसका दायरा फैला हुआ है। प्रभावी संचार मानव मात्र को बदलने की क्षमता रखता है। खासकर जब अनुभूति ही विचार रूप में परिणति होती है तो उसकी शक्ति कई गुणा बढ़ जाती है।

साहित्यकार दीनदयाल उपाध्याय

दीनदयाल उपाध्याय ने सदैव देश के समग्र विकास की बात की और उस समग्रता में देश के संचार माध्यम भी शामिल हैं। यह सर्वविदित है कि वे एक उच्च कोटि के लेखक और स्तंभकार भी थे। उनकी पुस्तक 'पॉलिटिकल डायरी' उनके द्वारा अँग्रेजी साप्ताहिक 'ऑर्गनाइजर' में लिखे गए स्तंभों का ही संकलन है। उन्होंने हिंदी साप्ताहिक 'पांचजन्य'में भी 'पराशर' नाम से विचार-वीथि स्तंभ लिखा। 'राष्ट्रधर्म' में भी उनके अनेक आलेख प्रकाशित हुए। 'राष्ट्रधर्म' के शुरुआती अंकों में तो लगभग सभी अंकों में उनके लिखे हुए लेख प्रकाशित हुए। हालाँकि, उनमें से ज्यादातर आलेख उनके नाम से प्रकाशित नहीं हुए। इसके अलावा उनकी एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। राजनीतिक नेता की हैसियत से उनके अनेक सार्वजनिक भाषण हुए और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक के नाते संघ के अनेक कार्यक्रमों और प्रशिक्षण शिविरों में उनके बौद्धिक भी हुए। उन सब भाषणों और बौद्धिकों का भी संकलन हुआ है। अपने आलेखों और भाषणों के अलावा उनका कार्यकर्ताओं के साथ औपचारिक और अनौपचारिक संवाद, उनका पहनावा, उनकी सादगी भी कहीं न कहीं एक संदेश देते थे। इस प्रकार एक लोक संचारक के रूप में जब दीनदयाल उपाध्याय के जीवन एवं चिंतन पर दृष्टि डालते हैं तो पता चलता है कि उन्होंने संचार के माध्यम से तत्कालीन समस्याओं से समाज व राष्ट्र को न सिर्फ अवगत् कराया, बल्कि उन समस्याओं का समाधान भी सुझाया। यह ऐसा भाव है जो आज भी विश्वभर के संचार माध्यमों और पत्रकारिता को बड़ी दिशा दे सकता है, क्योंकि आज मीडिया में समाधान की कम, समस्याओं की अधिक चर्चा होती है। दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता केवल समाज जागरण तक सीमित नहीं थी, उनकी पत्रकारिता राष्ट्रोत्थान के लिए थी। उनकी पत्रकारिता ने देश को अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, केवल रतन मलकानी जैसे दर्जनों दिग्गज लेखक एवं पत्रकार दिए। अटल

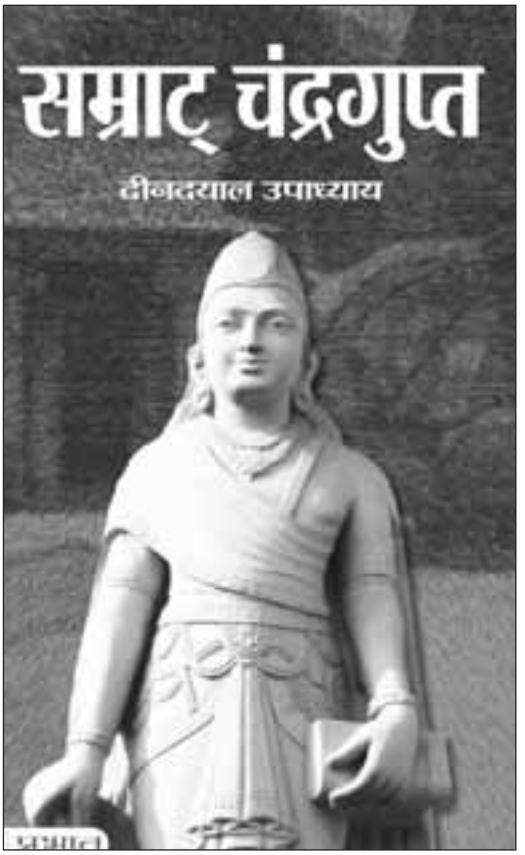

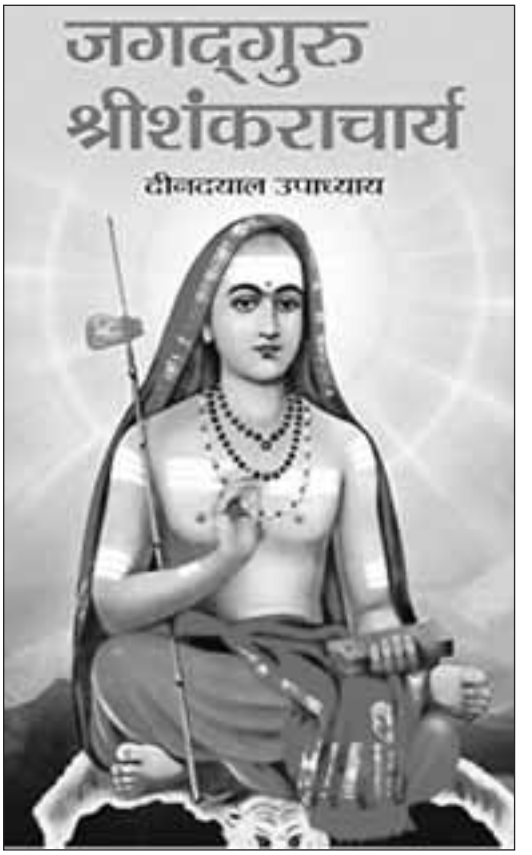

बिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण आडवाणी ने लंबे समय तक दीनदयाल उपाध्याय के साथ काम किया ।

प्रमुख पुस्तकें

दीनदयाल उपाध्याय का साहित्य रचना संसार में अत्यंत व्यापक है। समाचार-पत्रों के संपादन, मार्गदर्शन और प्रबंधन के अलावा वे एक सुलझे हुए लेखक थे। उनके लेखन के बारे में टिप्पणी करते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्री गुरुजी (श्री माधव सदाशिवराव गोलवलकर) ने कहा था कि दीनदयाल उपाध्याय जो भी लिखते थे उसे स्थायी वैचारिक अधिष्ठान प्रदान करके लिखते थे। यही कारण है कि उनके द्वारा लिखी गई सामग्री आज भी प्रासंगिक लगती है। उनकी सबसे पहली पुस्तक 'सम्राट चन्द्रगुप्त' 1946 में प्रकाशित हुई, जो उन्होंने एक ही बार में बैठकर 16 घंटे में पूरी कर ली थी। दूसरी पुस्तक 'जगदगुरु श्री शंकराचार्य'1947 में प्रकाशित हुई, जो युवाओं के लिए एक प्रेरक उपन्यास है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार के अधिकृत जीवन चरित्र का मराठी से हिंदी में अनुवाद दीनदयाल उपाध्याय ने ही किया था। कई पुस्तकें 1968 में उनके निधन के बाद प्रकाशित हुई। उनके द्वारा लिखी गई प्रमुख पुस्तकें हैं–

- सम्राट चन्द्रगुप्त (1946)
- जगदगुरु श्री शंकराचार्य (1947)

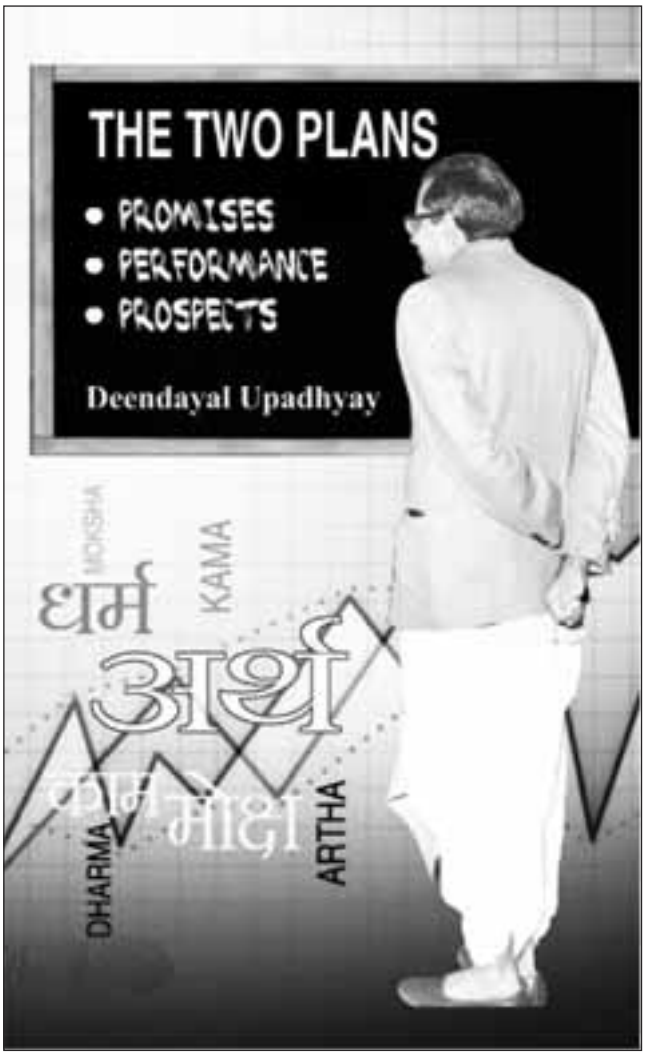

- अखंड भारत क्यों? (1952)
- हमारा कश्मीर (1953)
- जोड़ें कश्मीर- मुखर्जी नेहरू और अब्दुल्ला का पत्र व्यवहार (1953)
- टैक्स या लूट (1954)
- बेकारी की समस्या और उसका हल (1954)
- दो योजनाएं- वायदे, अनुपालन, आसार (1958)
- सिद्धांत और नीतियाँ (1964)
- एकात्म मानववाद (बंबई में दिये गये चार व्याख्यान) (1965)
- विश्वासघात (1965)
- वचन भंगः ताशकंद घोषणा की शव परीक्षा (1966)
- अवमूल्यन एक बड़ा पतन (1966)
- पॉलिटिकल डायरी (1968)
- राष्ट्र जीवन की दिशा (1971)
- भारतीय अर्थनीति- विकास की एक दिशा
- जनसँख्या का सिद्धांत और नीति

प्रमुख आलेख

दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित कुछ दीर्घ आलेख उनके चिंतन को समझने में सहायक हैं। ऐसे कुछ आलेख 'राष्ट्रधर्म' मासिक और 'पांचजन्य' साप्ताहिक में प्रकाशित हुए हैं। ऐसे कुछ आलेख निम्नलिखित हैं–

राष्ट्रधर्म में प्रकाशित लेख

- भारतीय राष्ट्र धारा का मुख्य प्रवाह (गौतम बुद्ध से शंकराचार्य तक)
- भगवान् कृष्ण (30 सितम्बर, 1947)
- भारतीय राजनीति की एक मौलिक भूल (5 दिसंबर, 1949)
- राष्ट्र जीवन की समस्याएँ (6 अक्टूबर, 1949)
- 'पांचजन्य' में प्रकाशित लेख
- लोकमान्य तिलक की राजनीति (29 जुलाई, 1948)
- '144' (9 सितम्बर, 1948)
- राजनीतिक आय-व्यय (11 नवंबर, 1948)
- राष्ट्रीय अनुभूति
- विजयदशमी

● भारतीय संविधान पर एक दृष्टि (24 नवंबर, 1949)

प्रमुख भाषण

हालाँकि दीनदयाल उपाध्याय देखने में अतिसामान्य व्यक्ति प्रतीत होते थे,परंतु वे हर प्रकार से मौलिक कल्पनाएँ करने की दृष्टि से, अपने शब्दों की सार्थकता की दृष्टि से, अथक रूप से अनवरत कार्य करने की क्षमता की दृष्टि से एवं जीवन की सरलता व निर्मलता की दृष्टि से एक असाधारण व्यक्तित्व थे। कहा जा सकता है कि उनकी जीवन-यात्रा 'अतिसाधारण से महामानव की ओर' जैसी रही है, जिनके इशारे पर एक इतिहास का निर्माण हुआ है। दीनदयाल उपाध्याय के संचारक पक्ष को समझने के लिए उनके द्वारा दिए कुछ भाषणों को समझना भी उपयोगी होगा। ऐसे कुछ भाषणों की सूची निम्नलिखित है–

● राष्ट्र जीवन की समस्याएँ(6 अक्टूबर, 1949)
● संविधान क्या करें? (2 फरवरी, 1950)
● राष्ट्रभाषा की समस्या
● अखंड भारत साध्य और साधन
● राष्ट्रीयता का पुण्य प्रवाह
● स्वतंत्रता की साधना और सिद्धि
●लोकमत का नियामक कौन हो?
● समाजवाद, लोकतंत्र और हिंदुत्त्ववाद
● लोकतंत्र का भारतीयकरण
● अर्थनीति का भारतीयकरण
● विकेंद्रित अर्थव्यवस्था
● शिक्षा
● सही शब्द सही अर्थ
● चिति-1 (28 नवम्बर, 1947)
● चिति-2 (16 नवम्बर, 1948)
● राष्ट्रात्मा व विश्वात्मा
● धर्मराज्य क्या और क्यों?
● धर्म धारणा से

दीनदयाल उपाध्याय को जब एक संचारक के रूप में देखते हैं तो बात सिर्फ उनके एक पत्रकार और लेखक होने तक नहीं रुकती, बल्कि उनके संचार का दायरा बहुत व्यापक दिखाई देता है। एक राजनेता और समाजसेवी होने के कारण उनका संपर्क का दायरा बहुत बड़ा था। भारत ही नहीं भारत से बाहर भी उन्होंने लोगों से संवाद किया। प्रश्न यह है कि वे आखिर किस प्रकार लोगों से संवाद करते थे?

संचार का व्यापक दायरा

दीनदयाल उपाध्याय को जब एक संचारक के रूप में देखते हैं तो बात सिर्फ उनके एक पत्रकार और लेखक होने तक नहीं रुकती, बल्कि उनके संचार का दायरा बहुत व्यापक दिखाई देता है। एक राजनेता और समाजसेवी होने के कारण उनका संपर्क का दायरा बहुत बड़ा था। भारत ही नहीं भारत से बाहर भी उन्होंने लोगों से संवाद किया। प्रश्न यह है कि वे आखिर किस प्रकार लोगों से संवाद करते थे? स्वाभाविक है कि उस समय संचार के जो भी माध्यम थे जैसे पत्र, समाचार-पत्र, पुस्तक आदि उन सबका वे उपयोग करते ही थे। परंतु एक लोक संचारक के रूप में उनके द्वारा एक राजनेता के रूप में दिए गए सार्वजनिक भाषणों को भी देखना पड़ेगा। आखिर वे अपनी राजनीतिक सभाओं में कैसे हजारों लोगों से एक साथ संवाद करते थे? उनके भाषण के बाद लोग जब अपने घरों को लौटते थे वे आखिर दीनदयाल जी की किस खास बात को ग्रहण करके जाते थे? इसके अलावा भारतीय जनसंघ के महासचिव और अध्यक्ष रहते हुए उन्होंने कार्यकर्ताओं और पार्टी नेताओं के साथ भी संवाद किया। उनके उस

जन-सामान्य, रिश्तेदारों, मित्रों, समकक्ष नेताओं और जनसंघ एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं से संवाद हेतु दीनदयाल उपाध्याय ने अपने जीवन में असंख्य पत्र लिखे। जो पत्र आज उपलब्ध हैं उन्हें पढ़ने से लगता है कि दीनदयाल जी पत्रों के माध्यम से कितना गंभीर संवाद करते थे। प्रत्येक पत्र कुछ न कुछ संदेश देता है। वर्ष 1968 में उनके निधन के पश्चात नानाजी देशमुख के प्रयासों से उनके द्वारा अलग-अलग लोगों को लिखे गए ऐसे पत्रों का संकलन किया गया था। उनके प्रकाशन की प्रक्रिया आरंभ ही होने वाली थी कि देश में अचानक आपातकाल लागू हो गया और आज तक इस बात का पता नहीं लगा कि वे सभी पत्र गायब कर दिए गए अथवा नष्ट कर दिए गए।

संवाद में क्या खास बात थी? जो पत्रकार उनसे मिलते थे, उनसे वे कैसे संवाद करते थे? जब वे किसी परिवार में भोजन आदि के लिए जाते थे तो परिवार के सदस्यों से वे कैसे संवाद करते थे? जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जिन कार्यकर्ताओं ने उनके सहायक के रूप में उनके साथ काम किया वे आखिर उनसे कैसे संवाद करते थे और उन्होंने अपनी संवाद कला से उनके जीवन को कैसे प्रभावित किया? पार्टी के समकक्ष और वरिष्ठ और कनिष्ठ नेताओं से वे कैसे संवाद करते थे? ऐसे तमाम प्रश्न हैं जिनका उत्तर ढूँढने की जरूरत है। इस दृष्टि से यह अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण है।

पत्रों के माध्यम से संवाद

जन-सामान्य, रिश्तेदारों, मित्रों, समकक्ष नेताओं और जनसंघ एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं से संवाद हेतु दीनदयाल उपाध्याय ने अपने जीवन में असंख्य पत्र लिखे। जो पत्र आज उपलब्ध हैं उन्हें पढ़ने से लगता है कि दीनदयाल जी पत्रों के माध्यम से कितना गंभीर संवाद करते थे। प्रत्येक पत्र कुछ न कुछ संदेश देता है। वर्ष 1968 में उनके निधन के पश्चात नानाजी देशमुख के प्रयासों से उनके द्वारा अलग-अलग लोगों को लिखे गए ऐसे पत्रों का संकलन किया गया था। उनके प्रकाशन की प्रक्रिया आरंभ ही होने वाली थी कि देश में अचानक आपातकाल लागू हो गया और आज तक इस बात का पता नहीं लगा कि वे सभी पत्र गायब कर दिए गए अथवा नष्ट कर दिए गए। जिस व्यक्ति की 1968 में हत्या कर दी गई थी, आखिर उसके पत्रों से किसी को क्या खतरा हो सकता था। किंतु वे पत्र नष्ट कर दिए गए। उन पत्रों का नष्ट होना एक अपूरणीय क्षति है। आज दीनदयाल जी द्वारा लिखे हुए थोड़े ही पत्र उपलब्ध हैं। एक पत्र दीनदयाल उपाध्याय ने 21 जुलाई, 1942 को अपने मामा श्री नारायण शुक्ल के नाम लिखा था। यह पत्र उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रचारक बनने के बाद लिखा। यह एक मार्मिक पत्र है। इसमें दीनदयालजी संघ प्रचारक बनने के कारणों को स्पष्ट करते हैं। यह पत्र 'पांचजन्य' में 'क्या अपना एक बेटा समाज को नहीं दे सकते?' शीर्षक के साथ 29 अप्रैल,1968 को प्रकाशित हुआ था।

पत्रकारों के प्रेरणापुंज

पत्रकारिता में दीनदयाल उपाध्याय के योगदान से पता चलता है कि वे भले ही कभी किसी समाचार पत्र-पत्रिका के औपचारिक संपादक अथवा संवाददाता नहीं रहे, कभी किसी समाचार पत्र में संपादक के रूप में उनका नाम प्रकाशित नहीं हुआ, कभी किसी कार्यालय में उनके लिए कुर्सी नहीं लगी, पत्रकारिता के

किसी स्कूल से उन्होंने कोई डिग्री/डिप्लोमा नहीं लिया, किसी पत्र या पत्रिका के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने कभी सरकारी मान्यता नहीं ली, कभी किसी पत्र से लेखन का कोई पारिश्रमिक नहीं लिया, परंतु फिर भी उन्होंने देश की समसामयिक समस्याओं पर पैनी नजर रखते हुए अपनी लेखनी चलायी और देश के असंख्य पत्रकारों के लिए प्रेरणापुंज और मार्गदर्शक बने। उन्होंने ही अटल बिहारी वाजपेयी, राजीव लोचन अग्निहोत्री, लालकृष्ण आडवाणी, महेंद्र कुलश्रेष्ठ, केवल रतन मलकानी, देवेंद्र स्वरूप, भानुप्रताप शुक्ल, गिरीश चंद्र मिश्र, वचनेश त्रिपाठी, बालेश्वर अग्रवाल, एन.बी. लेले, यादवराव देशमुख, दीनानाथ मिश्र, अच्युतानंद मिश्र सहित अनेक वरिष्ठ पत्रकारों एवं संपादकों की लेखनी को राष्ट्रीय दिशा प्रदान की। इनके अलावा अनेक पत्र-पत्रिकाओं के संपादक भी उन्हें सहज ही अपना मित्र एवं मार्गदर्शक मानते थे। आखिर ये सब कैसे संभव हुआ यह जानना बहुत जरूरी है। इसके अलावा दीनदयाल जी कैसे पार्टी नेताओं, कार्यकर्ताओं और जन सामान्य से संवाद करते थे इसे जानना भी आवश्यक है। ऐसे तमाम प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत शोध से प्राप्त हो सकेगा।

पत्रकारिता पर दिशाबोधक आलेख

दीनदयाल जी की पत्रकारिता दृष्टि को समझने के लिए उनके द्वारा 1963 में 'हिन्दुस्थान समाचार'बहुभाषी समाचार एजेंसी की 15वीं वर्षगांठ के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका के लिए लिखा गया संदेश महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। वह संक्षिप्त आलेख अत्यंत दिशाबोधक और सारगर्भित है। वह आलेख ज्यों का त्यों यहाँ प्रस्तुत है–

''प्रतिक्षण हमारे चारों ओर अनेक घटनाएँ घटती हैं। जीवन के प्रत्येक व्यवहार से उनका संबंध रहता है, इनमें से जिन घटनाओं को हम दूसरों को बताना आवश्यक तथा उचित समझते हैं, यह समाचार है। जिस समाचार का सार्वजनिक महत्त्व है, जो व्यक्तिगत अथवा कुटुंब मात्र की रुचि और चिंता का विषय न हो, अखबारों के लिए खबर बन जाता है। समाचार और साहित्य में मूल अंतर यही है कि समाचार मुख्यतः दूसरों की घटी और कृति से संबंध रखता है, जबकि साहित्य प्रधानतः आत्माभिव्यक्ति है। वस्तुगतता समाचार का मुख्य गुण है, किंतु अनगिनत घटनाओं में से समाचार संकलनकर्ता कुछ को ही रिपोर्ट करता है। सबका संकलन न तो संभव है, न आवश्यक। किसी भी दृश्य का या व्यक्ति का फोटो उनकी प्रतिछाया होती है। किंतु चित्रकार की तूलिका से बने चित्र में केवल वे विवरण रहते हैं, जो दर्शक को वस्तु की सही कल्पना देने के साथ उसके ऊपर वाँछित प्रभाव भी कर सके। इसी प्रकार घटना का यथार्थ वर्णन मात्र समाचार नहीं, बल्कि रुचिकर तथा जनता की जिज्ञासा को शांत करने वाला भी होना चाहिए।

समाचार और साहित्य में मूल अंतर यही है कि समाचार मुख्यतः दूसरों की घटी और कृति से संबंध रखता है, जबकि साहित्य प्रधानतः आत्माभिव्यक्ति है। वस्तुगतता समाचार का मुख्य गुण है, किंतु अनगिनत घटनाओं में से समाचार संकलनकर्ता कुछ को ही रिपोर्ट करता है। सबका संकलन न तो संभव है, न आवश्यक। किसी भी दृश्य का या व्यक्ति का फोटो उनकी प्रतिछाया होती है। किंतु चित्रकार की तूलिका से बने चित्र में केवल वे विवरण रहते हैं, जो दर्शक को वस्तु की सही कल्पना देने के साथ उसके ऊपर वांछित प्रभाव भी कर सके। इसी प्रकार घटना का यथार्थ वर्णन मात्र समाचार नहीं, बल्कि रुचिकर तथा जनता की जिज्ञासा को शांत करने वाला भी होना चाहिए।

''जनरुचि और जन जिज्ञासा का विचार करते हुए भी संवाददाता केवल दृष्टा और उदासीन भाव से काम नहीं करता। जनरुचि की तुष्टि तथा उत्पन्न जिज्ञासा की संतुष्टि ही नहीं तो जनरुचि का निर्माण तथा उसे दिशा देने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी संवाददाता को करना होता है। यह उसके कार्य का भावात्मक एवं रचनात्मक पहलू है। यदि उसे इस दिशा का भान नहीं रहा तो समाचार संकलन तथा वितरण में उसे सदैव कठिनाई बनी रहेगी तथा उसमें वह कोई विशेष रुचि निर्माण नहीं कर सकेगा। चुगलखोर एवं संवाददाता में अंतर है। चुगली जनरुचि का विषय हो सकती है, किंतु वह सही मायने में संवाद नहीं। संवाद को तो सत्य, शिव, सुंदर के तीनों आदर्शों को चरितार्थ करना चाहिए। केवल सत्य और सुंदर से काम नहीं चलेगा। संवाददाता शिव का बराबर ध्यान रखता है, किंतु वह उपदेष्टा की भूमिका में नहीं चलता। यह यथार्थ के सहारे वाचक को शिव की ओर इस प्रकार से ले जाता है कि शिव यथार्थ बन जाता है। संवाददाता न तो शून्य में विचरता है और न कल्पना जगत् की बातें करता है, वह तो जीवन की ठोस घटनाओं को लेकर चलता है और उनमें से शिव का सृजन करता है।

''उपर्युक्त पृष्ठभूमि में विचार करें तो यह मानना पड़ेगा कि तथ्यगतता समाचार का प्रधान गुण होते हुए भी वह संकलन कार्य के व्यक्तित्व से अछूता नहीं रह सकता। प्रत्येक समाचार में अपनी निजी विशेषता रहनी चाहिए। भारतीय समाचार जगत् में इस दृष्टि से बहुत कुछ कमी है। यहाँ के अधिकांश समाचार पत्र एक ही ढांचे के हैं। संपादकीय तथा एक-दो समाचारों को छोड़कर सब पत्र एक से हैं। फलतः सार्वजनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण काम करने वाले भी आवश्यक नहीं समझते कि वे एकाधिक समाचार पत्र पढ़ें। किसी भी एक समाचार पत्र से उनका काम चल जाता है। भारत के समाचार पत्रों का अपना कोई निजी व्यक्तित्व नहीं विकसित हुआ है।''

''इस स्थिति का मुख्य कारण है कि सभी समाचार पत्रों का स्रोत एक ही है-प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया। जो 'रायटर' की भारतीय शाखा एसोसिएटिड प्रेस ऑफ इंडिया का रूपांतर मात्र है। सरकारी सूचना विभाग ही इन पत्रों के समाचार के मुख्य आधार हैं, पत्रों के निजि संवाददाता नहीं के बराबर हैं। बहुधा तो एक ही संवाददाता कई-कई पत्रों को समाचार भेजता है। जहाँ अलग-अलग संवाददाता हैं भी, वहाँ सभी संवाददाता प्रायः एक ही संवाद भेजते हैं। कारण, किसी भी घटना के संवाद मूल्य के संबंध में अधिकांश संवाददाताओं की घिसी-पिटी धारणाएँ हैं और यदि किसी संवाददाता ने नए ढंग का समाचार भेजा भी तो समाचार संपादक अपनी लीक छोड़ने को तैयार नहीं। फलतः स्वराज्य के बाद भी हमने पत्रकारिता के क्षेत्र में कोई नया विकास नहीं किया है।

संवाद-जगत् में राजनीतिक नेताओं और संस्थाओं का प्रभाव, उनमें भी राजकर्ताओं का तो एक प्रकार से सर्वस्वी वर्चस्व हो गया है। यह भारतीय राष्ट्रजीवन की धारणा के प्रतिकूल है। राजनीति के अतिरिक्त भी क्षेत्र हैं, जिनमें जनता की रुचि है, किंतु उस ओर ध्यान नहीं जाता। यदि कहीं जाता भी है तो अपराध या दुर्घटनाओं के समाचार की ओर। साहित्य, संस्कृति, धर्म इन क्षेत्रों के समाचार तो यत्किंचित् ही मिलेंगे।

'संवाद-जगत् में राजनीतिक नेताओं और संस्थाओं का प्रभाव, उनमें भी राजकर्ताओं का तो एक प्रकार से सर्वस्वी वर्चस्व हो गया है। यह भारतीय राष्ट्रजीवन की धारणा के प्रतिकूल है। राजनीति के अतिरिक्त भी क्षेत्र हैं, जिनमें जनता की रुचि है, किंतु उस ओर ध्यान नहीं जाता। यदि कहीं जाता भी है तो अपराध या दुर्घटनाओं के समाचार की ओर। साहित्य, संस्कृति, धर्म इन क्षेत्रों

के समाचार तो यत्किंचित् ही मिलेंगे। विदेशी समाचारों का भी हमारे यहाँ बहुत प्रभुत्व है। अर्जेंटीना में हुई रेल दुर्घटना को हमारे यहाँ समाचार-पत्रों में स्थान मिल जाएगा, किंतु जगद्गुरु शंकराचार्य का यदि कोई कार्यक्रम नगर में भी हो तो संवाद योग्य नहीं समझा जाएगा। हाँ, 'रायटर' से प्राप्त होने के कारण पोप या किसी विदेशी पंथ प्रमुख के समाचार अवश्य छप जाएंगे। अकाली नेता मास्टर तारा सिंह के वक्तव्य संवाद योग्य समझे जाते हैं, क्योंकि वे राजनीति में भाग लेते हैं, किंतु शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के नेताओं के अन्य वक्तव्यों का कोई मूल्य नहीं।

आवश्यकता है कि समाचार क्षेत्र में विद्यमान इन विविध प्रकार के एकाधिपत्यों को तोड़ा जाए। विदेशी समाचार, अँग्रेजी भाषा, राजकर्ता, राजनीति, एक ही समाचार समिति, सरकारी सूचना विभाग का समाचार जगत् पर लगभग एकाधिकार है। जब तक यह समाप्त नहीं होता हम इस क्षेत्र में विकास नहीं कर पाएंगे। 'हिन्दुस्थान समाचार' ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से समाचार देने का एक स्तुत्य प्रयास किया है।

''संवाद मूल्य संबंधी इस धारणा के अतिरिक्त संवाद की भाषा भी महत्त्व का विषय है। अभी तक हमारा कामकाज अँग्रेजी में होता है। संवाद समितियाँ अंग्रेजी में चलती हैं, देशी भाषाओं के पत्र भी अँग्रेजी से अनुवाद के सहारे काम चलाते हैं। फलतः भाव की अभिव्यक्ति तो हो ही नहीं पाती। अनेकदा भाव के स्थान पर भाषा का अत्यधिक महत्त्व हो जाता है। अंग्रेजी में विचार करने वाले भारतीय भावों को ग्रहण नहीं कर पाते, जो ग्रहण भी करते हैं, उसे अँग्रेजी में व्यक्त नहीं कर पाते। जितने समाचार संकलित होते हैं, वे सब के सब अँग्रेजी पत्रों तथा उनके पाठकों को ध्यान में रखकर होते हैं और हिंदी पत्र या दूसरी भाषाओं के पत्र को वे ही समाचार दिये जाते हैं। प्रत्युत 'पी.टी.आई. के अनुसार तो उनको दूसरे दर्जे की सेवा, जो कुछ सस्ती है, दी जाती है। इनमें मूल समाचारों को और भी संक्षिप्त कर दिया जाता है। इन समाचार-पत्रों का संपादक अनुवादक से अधिक कुछ नहीं बन पाता। अनेक बार तो भारतीय भाषाओं में कही गयी बातों का संवाददाता अँग्रेजी में अनुवाद करता है और फिर उस अनुवाद का संपादक के द्वारा भारतीय भाषाओं में अनुवाद होता है। इस दोहरे अनुवाद में मूल की क्या गति होगी, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। मद्रास का हेमिल्टन ब्रिज जैसे बरबरस ब्रिज बन गया, उसी प्रकार इन वक्तव्यों का आए दिन रूप बिगड़ता रहता है। 'आवश्यकता है कि समाचार क्षेत्र में विद्यमान इन विविध प्रकार के एकाधिपत्यों को तोड़ा जाए। विदेशी समाचार, अँग्रेजी भाषा, राजकर्ता, राजनीति, एक ही समाचार समिति, सरकारी सूचना विभाग का समाचार जगत् पर लगभग एकाधिकार है। जब तक यह समाप्त नहीं होता हम इस क्षेत्र में विकास नहीं कर पाएंगे। 'हिन्दुस्थान समाचार' ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से समाचार देने का एक स्तुत्य प्रयास किया है। मैं आशा करता हूँ कि इसके समाचारों में हिन्दुस्थान की अभिव्यक्ति होगी तभी उसका नाम सार्थक होगा तथा विद्यमान अभाव को दूर करने में उसे सफलता मिलेगी''(शर्मा,2011)।

भाषा की शिष्टता

दीनदयाल उपाध्याय का यह आलेख भारतीय पत्रकारिता के आदर्श स्वरूप का एक खाका प्रस्तुत करता है। करीब 60 वर्ष पूर्व लिखा गया यह लेख आज भी प्रासंगिक है। इसमें भाषा की शिष्टता, समाचार का महत्त्व, समाचार और साहित्य में अंतर, समाचार में तथ्यगतता, संवाद समिति की समस्याएँ, समाचार संपादकों की जड़ता, मीडिया में राजनीतिक नेताओं का

प्रभाव, राजनीति के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों को नजरअंदाज करना, संवाद की भाषा, संपादकों पर सवार अँग्रेजियत, दोहरे अनुवाद की समस्या, समाचार क्षेत्र में विद्यमान विविध प्रकार के एकाधिपत्य, भारतीय भाषाओं में समाचार देने की जरूरत और समाचारों में भारत की अभिव्यक्ति आदि बिन्दुओं की ओर स्पष्ट संकेत किया गया है।

भाषा की शिष्टता के संबंध में 'नवभारत टाइम्स' और 'जनसत्ता' जैसे प्रतिष्ठित हिंदी समाचार पत्रों में संपादकीय विभाग का नेतृत्व करने के बाद भोपाल स्थित माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के कुलपति का दायित्व निभा चुके वरिष्ठ पत्रकार श्री अच्युतानंद मिश्र दीनदयाल जी से जुड़ी एक घटना का उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं– 'बात 1960 के दशक की है। श्री भानुप्रताप शुक्ल और मैं उन दिनों लखनऊ में 'पांचजन्य' के संपादन का कार्य देखते थे। हमने पंडित बचनेश त्रिपाठी से तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू पर एक कविता लिखवाई। कविता का शीर्षक था- '100 बरस की उम्र हो, तेरी जवाहर लाल'। कविता थी तो तथ्यों आधारित, परंतु उसकी भाषा व्यंग्यात्मक थी। कविता को 'पांचजन्य' के आवरण पृष्ठ पर छापा गया। हमें जानकारी मिली की दीनदयालजी लखनऊ में हैं। समाचार-पत्र की पहली प्रति लेकर हम दीनदयालजी के पास पहुँचे। उम्मीद थी कि दीनदयालजी शाबासी देंगे। दीनदयालजी ने कविता पढ़ी और कुछ सोचने लगे। थोड़ी देर बाद पूछा कि उस अंक की कितनी प्रतियाँ छप चुकी हैं? हमने कहा अभी थोड़ा ही छपी हैं। उन्होंने कहा इसकी छपायी तुरंत रुकवा दो और आवरण पृष्ठ पर छपी इस कविता को हटा दो। इसमें प्रधानमंत्री के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है वे शिष्टता की श्रेणी में नहीं आते। हमें अपने देश के प्रधानमंत्री के लिए अमर्यादित शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए' (मिश्र, 2021)।

दीनदयालजी ने कविता पढ़ी और कुछ सोचने लगे। थोड़ी देर बाद पूछा कि उस अंक की कितनी प्रतियाँ छप चुकी हैं? हमने कहा अभी थोड़ा ही छपी हैं। उन्होंने कहा इसकी छपायी तुरंत रुकवा दो और आवरण पृष्ठ पर छपी इस कविता को हटा दो। इसमें प्रधानमंत्री के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है वे शिष्टता की श्रेणी में नहीं आते। हमें अपने देश के प्रधानमंत्री के लिए अमर्यादित शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

भाषा के संबंध में 'पांचजन्य' के पूर्व संपादक भानुप्रताप शुक्ल भी एक घटना का जिक्र करते थे। वे बताते थे कि 'पांचजन्य' और उसके संपादकीय विभाग में काम करने वाले लोगों से दीनदयालजी के संबंध दिखते नहीं थे। सब उन्हें महसूस करते थे। उनका सान्निध्य बड़ा ही शिक्षाप्रद होता था। ये आते तो पत्रकारिता पर चर्चा होती। खबर कैसे बनानी, शीर्षक कैसे लगाना आदि से लेकर सभी छोटी-बड़ी सैद्धांतिक और व्यावहारिक बातें होती थीं। हम उनसे बहस भी करते थे। एक बार दीनदयालजी लखनऊ आए। उस दौरान संत फतेह सिंह किसी विषय पर आमरण अनशन कर रहे थे। उस संबंध में प्रकाशित होने वाले समाचार में हमने शीर्षक दिया 'अकाल तख्त के काल'। उन्होंने यह शीर्षक हटवा दिया और समझाया कि सार्वजनिक जीवन में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिससे परस्पर कटुता बढ़े तथा आपसी सहयोग और साथ काम करने की संभावना ही समाप्त हो जाए। अपनी बात को दृढ़ता से कहने का अर्थ कटुतापूर्वक कहना नहीं होना चाहिए।'

'आर्गनाइजर' के पूर्व संपादक केवल रतन मलकानी

बताया करते थे- 'वर्ष 1968 में जब तीन दिन से भी कम समय में तत्कालीन केंद्र सरकार ने हरियाणा, पश्चिम बंगाल और पंजाब की गैर-काँग्रेसी सरकारें गिरा दी तो 'आर्गेनाइजर'ने एक व्यंग्यचित्र छापा, जिसमें तत्कालीन गृहमंत्री श्री चव्हाण को लोकतंत्र के बैल को काटते हुए दर्शाया गया। बहुत से लोगों को यह अतिवाद लगा। दीनदयालजी की प्रतिक्रिया थी कि चाहे व्यंग्यचित्र ही क्यों न हो, गो-हत्या का दृश्य मन को धक्का पहुँचाने वाला है'। इसका अभिप्राय है कि दीनदयालजी व्यंग्यचित्रों के माध्यम से भी मर्यादा का पालन करने के पक्षधर थे। ये घटनाएँ वर्तमान मीडिया के लिए आइना है। वर्तमान में जिस प्रकार समाचार-पत्रों में अशिष्ट भाषा का प्रयोग कभी-कभी दिखाई देता है ऐसे में दीनदयाल जी का भाषा की शिष्टता का आग्रह बहुत प्रासंगिक दिखाई देता है।

जो काम पार्टी के हित में हो, पर देश या समाज के लिए अहितकर या अनुचित न लगे, तो पाठकों का मार्गदर्शन करने वाले समाचार-पत्र को क्या करना चाहिए'? प्रश्न में ही उत्तर भी निहित था। फिर बोले, 'भाई, पार्टी की अपनी कुछ विवशताएँ हड़ताल का समर्थन करने की हो सकती हैं, पर 'पांचजन्य'की तो ऐसी कोई विवशता नहीं होनी चाहिए।

मीडिया की निष्ठा किसके प्रति?

पत्रकारिता में यह प्रश्न आज भी महत्त्वपूर्ण है कि पत्रकार और समाचार-पत्र/टेलीविजन न्यूज चैनल/वेब पोर्टल की निष्ठा किसके प्रति होनी चाहिए। अपनी व्यक्तिगत विचारधारा के प्रति, किसी दल के प्रति अथवा देश और जनता के व्यापक हितों के प्रति? 'पांचजन्य'के पूर्व संपादक यादवराव देशमुख इस संबंध में एक प्रसंग का उल्लेख करते थे –'बात संभवतः 1961 की है। उस समय चीनी आक्रमण के बादल देश पर मंडराने लगे थे। उस समय अनेक राजनीतिक दलों एवं मजदूर संगठनों ने रेल कर्मचारियों की कतिपय मांगों के समर्थन में देशव्यापी रेल हड़ताल का आह्वान किया था। सन् 1962 के चुनावों को निकट देखकर भारतीय जनसंघ ने भी उस हड़ताल का समर्थन किया। उसके प्रमुख नेताओं को स्वाभाविक अपेक्षा थी कि 'पांचजन्य'भी उस हड़ताल का समर्थन करेगा। पर मैंने अपने संपादकीय सहयोगियों से विचार-विमर्श कर हड़ताल को देशहित में विरोधी करार दिया। सत्तारूढ़ कांग्रेस के समर्थक दैनिक-पत्र 'नवजीवन' ने उसे जनसंघ पर प्रहार करने का अच्छा माध्यम बना लिया। इससे जनसंघ के साथियों का नाराज होना स्वाभाविक था। उन्होंने दीनदयालजी से शिकायत की कि क्या जनसंघ की नीतियों-कार्यक्रमों का 'पांचजन्य' में विरोध उचित है? दीनदयालजी ने सायंकाल अपने आवास पर मुझे बुलाया और जनसंघ के कार्यकर्ताओं को भी। उनकी नाराजगी का कारण बताया। फिर स्वयं ही प्रश्न किया, 'जो काम पार्टी के हित में हो, पर देश या समाज के लिए अहितकर या अनुचित लगे, तो पाठकों का मार्गदर्शन करने वाले समाचार-पत्र को क्या करना चाहिए'? प्रश्न में ही उत्तर भी निहित था। फिर बोले, 'भाई, पार्टी की अपनी कुछ विवशताएँ हड़ताल का समर्थन करने की हो सकती हैं, पर 'पांचजन्य'की तो ऐसी कोई विवशता नहीं होनी चाहिए। मुझे लगता है आप लोगों ने अपनी-अपनी जगह ठीक ही निर्णय लिया है'। अपनी बात को दृढ़ता से कहने का अर्थ कटुतापूर्वक कहना नहीं होना चाहिए।' बात यहीं पर साफ हो गयी। पार्टियाँ देश या समाज से बड़ी नहीं हो सकतीं। देशहित ही सर्वोपरि होना चाहिए। पत्रकार की निष्ठा भी देश के प्रति ही अपेक्षित है' (शर्मा, 2011, पृष्ठ 57-58)।

दीनदयाल उपाध्याय वर्ष 1952 से 1967 तक

लगभग 15 साल भारतीय जनसंघ के राष्ट्रीय महामंत्री रहे। 1953 में डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की मृत्यु के बाद भारत राजनीति को नई दिशा देने का दायित्व दीनदयाल उपाध्याय के कंधों पर आया और उन्होंने इस कार्य को चुपचाप अपने ढंग से पूरा किया। 1967 में जब आम चुनाव के परिणाम सामने आने लगे तब देश आश्चर्यचकित रह गया। उन्होंने इसे द्वितीय क्रांति की संज्ञा दी। जनसंघ राजनीतिक दलों में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के पश्चात् दूसरे क्रमांक पर पहुँच गया। यद्यपि दीनदयाल उपाध्याय बड़े नेता बन चुके थे,परंतु वह अपने आप को एक साधारण व्यक्ति की तरह ही रखते थे। यहाँ तक कि वह अपने सारे कार्य स्वयं करते थे। अपने कपड़े धोना, उसका रख-रखाव स्वयं करते थे। गांधी, विनोबा आदि महापुरुषों की तरह वह सरल,सहज और सादगी के प्रतीक थे। अपने जीवन में उन्होंने विदेशी वस्तु न कभी खरीदी न ही कभी उपयोग किया।

जिस प्रकार सुकरात को विष का प्याला पिलाया गया, क्राइस्ट को सूली पर टाँग दिया गया, अब्राहम लिंकन, ट्रोट्स्की, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी श्रद्धानंद, महात्मा गांधी और कैनेडी की हत्या की गई, उसी प्रकार दीनदयाल उपाध्याय की भी हत्या कर दी गयी। परंतु ये सभी लोग मरे नहीं, बल्कि मरकर भी अमरतत्व को प्राप्त कर गए। दीनदयाल उपाध्याय ने जनसंघ में एक-एक कार्यकर्ता का निर्माण कर एक राज्य से दूसरे राज्य में संगठन का विस्तार किया।

जनसंघ के कानपुर अधिवेशन में डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने उन्हें महामंत्री पद पर नियुक्त किया था। उनमें अद्भुत ही संगठन शक्ति थी। डॉ. मुखर्जी उनकी संगठन क्षमता से इतने प्रभावित हुए कि कानपुर अधिवेशन में उनके मुख से यह शब्द निकले 'यदि मेरे पास दो दीनदयाल हों तो मैं भारत का राजनीतिक रूप बदल दूंगा'। दिसम्बर 1967 में 15 वर्ष राष्ट्रीय महामंत्री रहने के पश्चात् जनसंघ के कालीकट में हुए दसवें राष्ट्रीय अधिवेशन में अध्यक्ष निर्वाचित हुए तथा एक संपूर्ण राजनीतिक विचार के प्रणेता बने। नियति का भी क्या संयोग था कि दीनदयाल जी मात्र 43 दिन ही अध्यक्ष के पद पर रहे और 10 फरवरी, 1968 की अर्ध रात्रि को मुगलसराय रेलवे स्टेशन पर उनकी हत्या हो गयी। जिस प्रकार सुकरात को विष का प्याला पिलाया गया, क्राइस्ट को सूली पर टाँग दिया गया, अब्राहम लिंकन, ट्रोट्स्की, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गांधी और कैनेडी की हत्या की गई, उसी प्रकार दीनदयाल उपाध्याय की भी हत्या कर दी गयी। परंतु ये सभी लोग मरे नहीं, बल्कि मरकर भी अमरतत्व को प्राप्त कर गए। दीनदयाल उपाध्याय ने जनसंघ में एक-एक कार्यकर्ता का निर्माण कर एक राज्य से दूसरे राज्य में संगठन का विस्तार किया। अटल बिहारी वाजपेयी के शब्दों में 'दीनदयाल जी स्वयं तो संसद सदस्य नहीं थे, परंतु वे जनसंघ के सभी संसद सदस्यों के निर्माता थे। इतने पर भी कभी किसी ने उनको अपने बारे में या अपने प्रयत्नों के बारे में कुछ कहते नहीं सुना। 'मैं' शब्द के प्रयोग को वह निषिद्ध मानते थे। श्री यज्ञदत्त के शब्दों में 'उनका जीवन पवित्र त्रिवेणी था, जिसमें 'तमस' संगम की 'सरस्वती' के समान अदृश्य था, जबकि 'रजस्व'और सत्व यमुना और गंगा के समान गहरे थे'(मिश्र, 2019, पृष्ठ 9-10)।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि दीनदयाल उपाध्याय के संचार का मूल उद्देश्य देश, समाज और राष्ट्र का उत्थान था। उनके संचार में जनकल्याण और राष्ट्रोत्थान सर्वोपरि था। व्यक्तिगत हित तो उन्होंने अपने जीवन में कभी सोचा ही नहीं। पूरा भारत उनका परिवार था। इसलिए उन्होंने

सबके कल्याण की बात की। उनके संचार का ध्येय समाज को एक राष्ट्रीय दृष्टि प्रदान करना था। आप समाचार-पत्रों में प्रकाशित उनके लेख और स्तंभ देखें, पुस्तकों की विषयवस्तु देखें, राजनीतिक भाषणों और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता के नाते संघ के कार्यक्रमों में दिए गए भाषणों का सार देखें, एक राजनेता के रूप में मीडिया के साथ किये गए संवाद को देखें, जनसंघ, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अथवा जनसामान्य के साथ किये गए अनौपचारिक संवाद को देखें, या फिर अपने पत्रों के माध्यम से किये गए संवाद को देखें तो यही भाव देखने को मिलता है। वे निर्विवाद रूप से एक लोक संचारक थे और अपने संचार में उन्होंने भारत की प्राचीन संचार परंपरा की ही निर्वाह किया। अरस्तु ने संचारक के लिए जैसे सद्गुणी होने की कल्पना की दीनदयाल जी वैसे ही सद्गुणी थे। उन्होंने समाज में दुर्गुण का नहीं सद्गुण का, असत्य का नहीं सत्य का, अंधकार का नहीं प्रकाश का ज्ञान, अज्ञान का नहीं ज्ञान का, अविद्या का नहीं विद्या का संचार किया। इस लेखमाला के अगले भाग में दीनदयाल उपाध्याय के संचारक पक्ष को दर्शाते अन्य पक्षों पर चर्चा की जाएगी।

लेखक क्रमशः

1. लेखक केंद्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला हिमाचल प्रदेश में शोधार्थी हैं।

2. भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली में प्रोफेसर व डीन हैं।

संदर्भ

- उपाध्याय, जी. (2016). संचार– ज्ञान का साधारणीकरण. मीडिया नव चिंतन. जनवरी-मार्च, 2016. पृष्ठ 47-53.mcu.ac.in/media-nav-chintan/w®v{/Jan-Mar/mn_y|_zx.pdf से दिनांक 14 मार्च, 2024 को पुनः प्राप्त.
- मिश्र, ए. डी. (2019). दीनदयाल उपाध्याय-एक अध्ययन. नई दिल्ली कांसेप्ट पब्लिशिंग कं.प्रा. लिमिटेड.
- मिश्र, ए. एन. (2021). वरिष्ठ पत्रकार एवं पूर्व कुलपति, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय. दिनांक 8 दिसंबर, 2021 को दूरभाष पर साक्षात्कार.
- पी.टी.आई. (2017). अमित शाह लिस्ट्स एक्सप्रेशंस यूज्ड बाय कांग्रेस लीडर्स अगेंस्ट पीएम नरेन्द्र मोदी. https://economictimes. indiatimes. com/news/politics-and-nation/amit-shah-lists-e&pressions-used-by-congress-leaders-against-pm-narendra-modi/articleshow/{v~{|vvz.cms?from=mdr से दिनांक 2 अप्रैल, 2020 को पुनः प्राप्त.
- रणजीत. (2013). संचारक के तत्त्व. https://mediakipathshala.blogspot.com/w®vx/vw/sanchaar-ke-tatwa.html से दिनांक 15 मार्च, 2024 को पुनः प्राप्त.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2011). पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्लीः दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2011). पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्लीः दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी, पृष्ठ 55-57.
- शर्मा, एस. (2020). लोक साहित्य का अर्थ एवं परिभाषाएँ.https://sunitasharmahpu.wordpress.com/w®w®/®~/®z/lok-sahity-ka-arth-paribhasha/ से दिनांक 14 अप्रैल, 2021 को पुनः प्राप्त.

लेखन में ही नहीं जीवन के अनेकानेक क्षेत्रों में कई बार ऐसा होता है कि हम पहल करने अथवा समय पर निर्णय लेने से चूक जाते हैं। हम कोई कार्य, कोई नेक कार्य या कोई नया कार्य करना चाहते हैं लेकिन कोई संकोच या संशय हमें कार्य संपन्न करने अथवा पहल करने से रोक देता है। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि हम किसी अच्छे कार्य की पहल करने के श्रेय से वंचित रह जाते हैं और कभी-कभी तो बाद में या तो दोबारा उसे करने का अवसर ही नहीं मिलता या वह विचार ही विस्मृति के गर्भ में चला जाता है। संभव है इस कारण से लोग सचमुच किसी महान् कृति, सिद्धांत अथवा खोज या अनुसंधान से वंचित ही रह जाएँ। इसीलिए ज़रूरी है कि किसी भी सकारात्मक व उपयोगी विचार को निशंक होकर यथाशीघ्र कार्यरूप देने का प्रयास किया जाए। प्रस्तुत लेख में इस महत्त्वपूर्ण विषय के विविध पहलुओं की विशद् चर्चा कर रहे हैं श्री सीताराम गुप्ता–

सीताराम गुप्ता

जीवन में पश्चाताप से बचना है तो समय पर पहल करना सीखें

मैं जब भी किसी नए विषय पर कोई आलेख अथवा कथा-कहानी आदि लिखने बैठता हूँ तो लिखने से पूर्व प्रायः मन में ये विचार आता है कि ये रचना करना ठीक भी रहेगा या नहीं। कहीं संपादक, प्रकाशक अथवा पाठक इसे मज़ाक़ में न ले लें अथवा सतही रचना समझ कर नकार न दें। यदि मन में इस प्रकार का संशय पैदा हो जाता है तो प्रायः वह रचना आकार नहीं ले पाती लेकिन कुछ ही दिनों बाद उसी विषय पर प्रकाशित किसी अन्य रचनाकार की रचना देखता हूँ तो बड़ा अफ़सोस होता है कि मैंने उस दिन इस विषय पर क्यों नहीं लिखा। प्रकाशित इस रचना से पूर्व इस विषय पर मैंने कोई रचना नहीं देखी थी। यदि इस रचना से पूर्व इस विषय पर अन्य कोई रचना प्रकाशित नहीं हुई थी और मैं उस समय लिख लेता तो इस विषय पर लिखने वाला मैं पहला रचनाकार भी हो सकता था।

लेखन में ही नहीं जीवन के अनेकानेक क्षेत्रों में कई बार ऐसा ही होता है कि हम पहल करने अथवा समय पर निर्णय लेने से चूक जाते हैं। हम कोई कार्य, कोई नेक कार्य या कोई नया कार्य करना चाहते हैं लेकिन कोई संकोच या संशय हमें कार्य संपन्न करने अथवा पहल करने से रोक देता है। इसका दुष्परिणाम यह होता है

कि हम किसी अच्छे कार्य की पहल करने के श्रेय से वंचित रह जाते हैं और कभी-कभी तो बाद में या तो दोबारा उसे करने का अवसर ही नहीं मिलता या वह विचार ही विस्मृति के गर्भ में चला जाता है। संभव है इस कारण से लोग सचमुच किसी महान कृति, सिद्धांत अथवा खोज या अनुसंधान से वंचित ही रह जाएँ। इसीलिए ज़रूरी है कि किसी भी सकारात्मक व उपयोगी विचार को निशंक होकर यथाशीघ्र कार्यरूप देने का प्रयास किया जाए।

समय पर पहल न करने के गंभीर परिणाम

प्रायः हमारे समय पर पहल न करने अथवा निर्णय न लेने के गंभीर परिणाम भी हमें भुगतने पड़ते हैं। कोई बात समय पर न कह पाने के कारण परिचितों के बीच उपजी ग़लतफ़हमियाँ बढ़ती चली जाती हैं। किसी से मिलने जाने के निर्णय में देर करने पर संभव है कि उससे फिर कभी मिलना हो ही न सकें। मैं ही क्यों पहले बात करूँ या मिलने जाऊँ, ऐसे विचार जीवन में तबाही ला सकते हैं। एक छोटी सी पहल जीवन को सदा के लिए खुशियों से भर सकती है। समय पर कहा गया एक वाक्य हमारे अमूल्य संबंधों को टूटने से बचा सकता है। उचित समय पर किसी के कंधे पर रखा गया हाथ उसे टूटकर बिखरने से बचा सकता है। उर्दू शायर मुनीर नियाज़ी की एक नज़्म ''हमेशा देर कर देता हूँ मैं ...'' याद आ रही है। नज़्म की कुछ पंक्तियाँ देखिए-

हमेशा देर कर देता हूँ मैं, हर काम करने में
ज़रूरी बात कहनी हो कोई, कोई वादा निभाना हो
उसे आवाज़ देनी हो, उसे वापस बुलाना हो
हमेशा देर कर देता हूँ मैं ...
किसी को मौत से पहले, किसी ग़म से बचाना हो
हक़ीक़त और थी कुछ, उसको जा के ये बताना हो
हमेशा देर कर देता हूँ मैं ...

हमारे समय पर पहल न करने अथवा निर्णय न लेने के गंभीर परिणाम भी हमें भुगतने पड़ते हैं। कोई बात समय पर न कह पाने के कारण परिचितों के बीच उपजी ग़लतफ़हमियाँ बढ़ती चली जाती हैं। किसी से मिलने जाने के निर्णय में देर करने पर संभव है कि उससे फिर कभी मिलना हो ही न सकें। मैं ही क्यों पहले बात करूँ या मिलने जाऊँ, ऐसे विचार जीवन में तबाही ला सकते हैं।

कई बार हम सोचते हैं कि हर विचार को कार्य रूप देना कहाँ संभव है और यही हमारी सबसे बड़ी भूल है। वास्तव में मनुष्य जो सोच सकता है वह कर भी सकता है अर्थात् मनुष्य जो कार्य नहीं कर सकता उसे सोचना ही असंभव है। असंभव से दिखने वाले ही नहीं, कई बार साधारण से कार्य को करने में भी हम कोताही बरतते हैं। कई बार फूल उगाने के लिए हम बीज खरीद लाते हैं। हम बीज तो खरीद लाते हैं लेकिन उन्हें गमलों या क्यारियों में बोने में कोताही बरतते हैं। फूलों का पूरा सीज़न निकल जाता है लेकिन बीज बोने का फैसला नहीं कर पाते। क्या सचमुच यह बहुत मुश्किल कार्य है? वैसे भी ये क्या हम ही हैं जो बीजों से पौधे बनाते हैं और उन पर फूल खिलाते हैं? नहीं, हमें तो मात्र पहल करनी होती है। शेष कार्य प्रकृति स्वयं करती है। हम तो निमित मात्र होते हैं। फिर भी किसी कार्य को प्रारंभ करने अथवा पहल करने में इतना आलस्य और विलंब या संकोच अथवा दुविधा क्यों?

यदि बीजों को उसी समय मिट्टी के हवाले कर दिया

होता तो आज उन फूलों के सौंदर्य, उनके रंगों और खुशबू से वंचित नहीं रहते। सामने के मकान की बालकनी अथवा टैरेस पर जब रंग-बिरंगे व सुगंधित पुष्प अपनी आभा बिखरने लगते हैं तभी हमें अपने समय पर निर्णय न लेने का अफसोस होता है लेकिन अब पछताए होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत। हमारे विचार भी बीजों की तरह ही होते हैं। उचित समय पर बीज बोने की तरह ही उचित समय पर मन में विचार रूपी बीजों को बोना व उन्हें कार्यरूप में परिणत करना भी अनिवार्य है अन्यथा अनेकानेक उपयोगी विचार अंतरिक्ष में उल्काओं की भाँति जलकर अस्तित्वहीन हो जाएँगे। किसी भी सकारात्मक व उपयोगी विचार को दृढ़ करके उसे फौरन कार्यरूप में परिणत करना हम सबके हित में होता है।

क्या अच्छा है और क्या बुरा है ये हम सब भली-भाँति जानते है लेकिन अच्छे कार्य को करने के लिए हम जिस शुभ मुहूर्त की तलाश में रहते हैं वो कभी नहीं आता। अतः जब भी कोई नया, अनोखा या मौलिक विचार मन में आए सफलता-असफलता की परवाह किए बिना उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए कटिबद्ध हो जाएँ। इससे न केवल आपको उसका प्रवर्तक या संस्थापक होने का गौरव प्राप्त हो सकता है ।

कई बार हम बहुत-सी अच्छी-अच्छी पुस्तकें ख़रीद लाते हैं और उन्हें अलमारियों में सजाकर रख देते हैं कि कभी आराम से पढ़ेंगे लेकिन वो दिन कभी नहीं आता। माना कि आप अत्यधिक व्यस्त हैं तो भी पढ़ने का समय निकालिए। पुस्तकें कितनी भी अच्छी क्यों न हों उनकी सार्थकता पढ़ने में है न कि मात्र ख़रीदने में। मान लीजिए कि हम पुस्तकें पढ़ते भी हैं। कई बार हम कोई अच्छी-सी प्रेरक पुस्तक पढ़ते हैं और हमें लगता है कि इसमें हमारे लिए कई जीवनोपयोगी सूत्र हैं जो हमारे जीवन की दिशा बदल सकते हैं। हम ऐसे जीवनोपयोगी सूत्रों को रेखांकित कर लेते हैं, उन्हें कंठस्थ कर लेते हैं लेकिन ऐसे सूत्रों की सार्थकता उन्हें रटने में नहीं अपितु फौरन व्यवहार में लाने में है। ज्ञान-विज्ञान से लाभांवित होना अपेक्षित है सिर्फ पढ़ना नहीं। इस प्रकार के निर्णय लेने के लिए हमें संशय व संकोच का फौरन त्यागकर क्रियान्वयन के लिए तत्पर हो जाना चाहिए।

वह शुभ मुहूर्त जो कभी नहीं आता

क्या अच्छा है और क्या बुरा है ये हम सब भली-भाँति जानते है लेकिन अच्छे कार्य को करने के लिए हम जिस शुभ मुहूर्त की तलाश में रहते हैं वो कभी नहीं आता। अतः जब भी कोई नया, अनोखा या मौलिक विचार मन में आए सफलता-असफलता की परवाह किए बिना उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए कटिबद्ध हो जाएँ। इससे न केवल आपको उसका प्रवर्तक या संस्थापक होने का गौरव प्राप्त हो सकता है अपितु वह कार्य किसी के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण भी हो सकता है, किसी का जीवन भी बदल सकता है। जब भी कोई अच्छा कार्य करने का विचार मन में आए उसे फौरन कर डालिए क्योंकि संभव है कि बाद में समय, संसाधन अथवा अच्छे स्वास्थ्य के अभाव में यह कार्य करना ही असंभव हो जाए। किसी नेक काम को अंजाम देने का हमारा इरादा ही न बदल जाए इसलिए कहा गया है कि शुभ कार्यों को शीघ्र कर डालिए। जीवन में अफ़सोस करने की नौबत न आए इसलिए नेक कार्यों को करने का दृढ़ संकल्प लेकर उन्हें वास्तविकता में परिवर्तित कर दीजिए।

लेखक सामाजिक विषयों के समर्थ लेखक हैं।

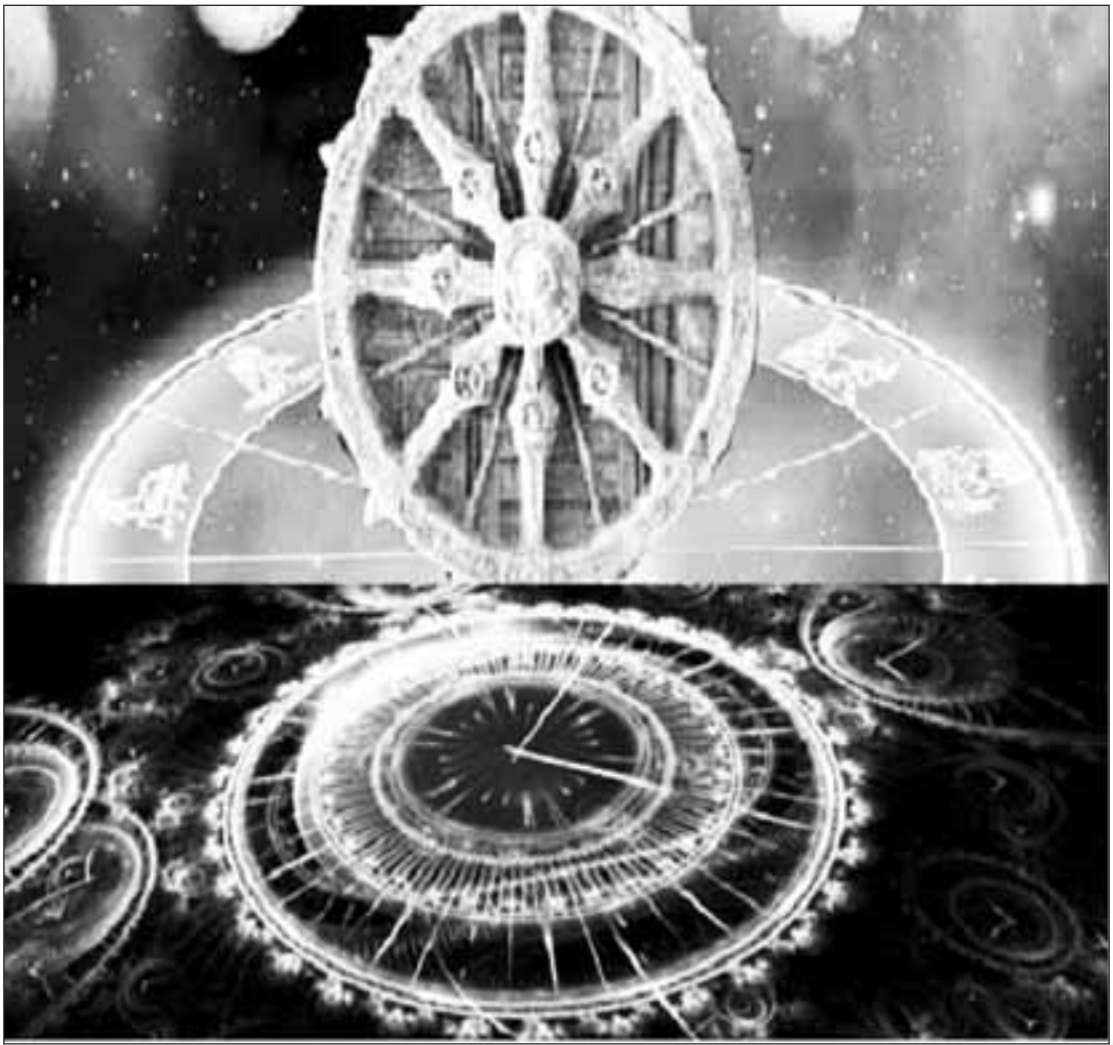

भारतीय, ग्रीक, रोमन, चीनी माइथोलॉजी अत्यंत विकसित हैं और इनमें अनेक प्रकार के देवी-देवताओं की चर्चा हमें उपलब्ध होती हैं। अलौकिक और पारलौकिक शक्तियों से युक्त इन देवी-देवताओं के सृजन से उन समाजों की कल्पना शक्ति का तो परिचय हमें प्राप्त होता ही है; दूसरी ओर उनकी इच्छा-आकांक्षाओं को भी प्रतिबिंबित करता है। इनके सृजन में संभवतः बड़ा समय लगा होगा और जाने ही कितने लोगों ने मिलकर इनके सृजन में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया होगा। पौराणिकता की सार्वजनिक स्वीकृति और इनका आकर्षक और रोमांचकारी क्रमिक विकास का आख्यान हमारे हृदय में एक सार्थक सनसनी उत्पन्न करता है। कई बार देखा गया है कि इन पौराणिकताओं के पीछे सामान्य लोगों की विधि-न्याय और मुक्ति-भावना की सोच निहित होती है, किंतु कभी-कभी समाज का ताकतवर, वर्चस्वशाली शासक, नेता, मुखिया आदि वाला वर्ग अपने निहित स्वार्थों के लिए भी इसका परिवर्तन-रूपांतरण करता है।

रवि तिवारी

भारतीय ज्ञान परंपरा में पौराणिकता

भारतीय ज्ञान परंपरा बहुत ही समृद्ध, सार्थक तथा ज्ञानवर्धक हैं। ज्ञान के समस्त आयामों के साथ ही इसमें हमें पौराणिकता भी सकारात्मक तथा उत्तम रूप में प्राप्त होती हैं। वर्धा हिंदी शब्दकोश के अनुसार पौराणिक शब्द का अर्थ होता है कि पुराण संबंधी, प्राचीन काल का, पुराणों का ज्ञाता तथा जिसका विवरण पुराणों में मिलता हो।[1] अर्थात जो पुराण तथा प्राचीन काल आदि से संबंधित हो उसे पौराणिकता कहते हैं। अँग्रेजी में इसके लिए माइथॉलजी शब्द का प्रयोग किया जाता है, तथा अँग्रेजी में इसका अर्थ होता है कि myths collectively; the body of stories associated with a culture or institution or person. अर्थात् मिथक सामूहिक रूप से किसी संस्कृति या संस्था या व्यक्ति से जुड़ी कहानियों का संग्रह होता है।[2]

विश्व के प्रत्येक देश-समाज में सामान्यतः कुछ ऐसे पारलौकिक व्याखान, आख्यानों आदि से संबंधित दिखते हैं, जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं हैं, ऐसा विद्वानों का एक पक्ष मानता है परंतु दूसरी ओर विद्वानों का एक पक्ष यह भी मानता है कि यह सभी बातें शत-प्रतिशत सत्य हैं। भारतीय, ग्रीक, रोमन,

चीनी माइथोलॉजी अत्यंत विकसित हैं और इनमें अनेक प्रकार के देवी-देवताओं की चर्चा हमें उपलब्ध होती हैं। अलौकिक और पारलौकिक शक्तियों से युक्त इन देवी-देवताओं के सृजन से उन समाजों की कल्पना शक्ति का तो परिचय हमें प्राप्त होता ही है; दूसरी ओर उनकी इच्छा-आकांक्षाओं को भी प्रतिबिंबित करता है। इनके सृजन में संभवतः बड़ा समय लगा होगा और जाने ही कितने लोगों ने मिलकर इनके सृजन में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया होगा। पौराणिकता की सार्वजनिक स्वीकृति और इनका आकर्षक और रोमांचकारी क्रमिक विकास का आख्यान हमारे हृदय में एक सार्थक सनसनी उत्पन्न करता है। कई बार देखा गया है कि इन पौरणिकताओं के पीछे सामान्य लोगों की विधि-न्याय और मुक्ति-भावना की सोच निहित होती है, किंतु कभी-कभी समाज का ताकतवर, वर्चस्वशाली शासक, नेता, मुखिया आदि वाला वर्ग अपने निहित स्वार्थों के लिए भी इसका परिवर्तन-रूपांतरण करता है।

अधिकांश पौराणिक पात्र अपनी प्राथमिक अवस्था में दयालु-कृपालु और समदर्शी होते हैं और अपनी ताकत से पीड़ित-उत्पीड़ित मनुष्यों की मुक्ति के लिए ये कोई भी कार्य या अलौकिक कार्य आदि करने में भी सक्षम होते हैं। इसीलिए जनमानस इन्हें स्वयं से जोड़े रखने का प्रयास करता है। संभवतः इसीलिए प्रायः सभी संस्थागत धर्मों में पौराणिकता, हमें उपलब्ध होती है।

अधिकांश पौराणिक पात्र अपनी प्राथमिक अवस्था में दयालु-कृपालु और समदर्शी होते हैं और अपनी ताकत से पीड़ित-उत्पीड़ित मनुष्यों की मुक्ति के लिए ये कोई भी कार्य या अलौकिक कार्य आदि करने में भी सक्षम होते हैं। इसीलिए जनमानस इन्हें स्वयं से जोड़े रखने का प्रयास करता है। संभवतः इसीलिए प्रायः सभी संस्थागत धर्मों में पौराणिकता, हमें उपलब्ध होती है। इसी संदर्भ में हिंदू पौराणिकता या माइथोलॉजी भी एक विकसित माइथोलॉजी है।

पौराणिकता हमारी सोच, साहित्य, भाषा और मुहावरों में महीन स्तर तक घुले-मिले होते हैं और इन्हें समाप्त करना किसी भी तरह संभव नहीं है। हम इसकी नवीन व्याख्या-पुर्नव्याख्या अथवा पाठ-पुर्नपाठ आदि भी सदैव करते रहते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पौराणिकता हमारे अस्तित्व के प्रारंभ से क्रियाशील है जिसमें हमारे इतिहास के सार्थक और गौरवशाली पुरुषों, कथा-प्रंसगों, कृत्यों, युद्धों आदि का उत्तम सम्मिश्रण होता है। इसी प्रकार साहित्यिक दृष्टिकोण से विचार करें तो साहित्य शब्द स्वयं अपने में विशिष्ट, महत्त्वपूर्ण, उत्तम एवं सार्थक होता हैं। इसका शाब्दिक अर्थ होता है कि 'सहित' या साथ होने की अवस्था या भाव। एक साथ होना, रहना या मिलना। वे सभी वस्तुएँ जिनका किसी कार्य के संपादन के लिए उपयोग होता है। आवश्यक सामग्री; जैसे पूजा का साहित्य अर्थात् अक्षत, जल, फूल-माला, गंध-द्रव्य आदि।[3]

इसी प्रकार वांड्मय और साहित्य में मुख्य अंतर यह है कि वांड्मय के अंतर्गत तो ज्ञान राशि का वह सारा संचित भंडार आता है जो मनुष्य को नवीन दृष्टि देता और उसे जीवन-संबंधी सत्यों का परिज्ञान मात्र कराता है, किंतु साहित्य उक्त समस्त भंडार का वह विशिष्ट अंश है जो मनुष्य को ऐसी अंर्तदृष्टि देता है जिससे कलाकार किसी प्रकार की कलासृष्टि करके आत्मोपलब्धि करता है और रसिक लोग उस कला का आस्वादन करके लोकोत्तर आनंद का अनुभव करते हैं।[4] वे सभी लेख, ग्रंथ आदि जिनका सौंदर्य गुण, रूप अथवा भावुकतापूर्ण प्रभावों के कारण समाज में आदर होता है, उसे भी साहित्य कहते हैं। इसके अलावा वर्तमान में मुख्य तौर पर गद्य और पद्य की शैली और

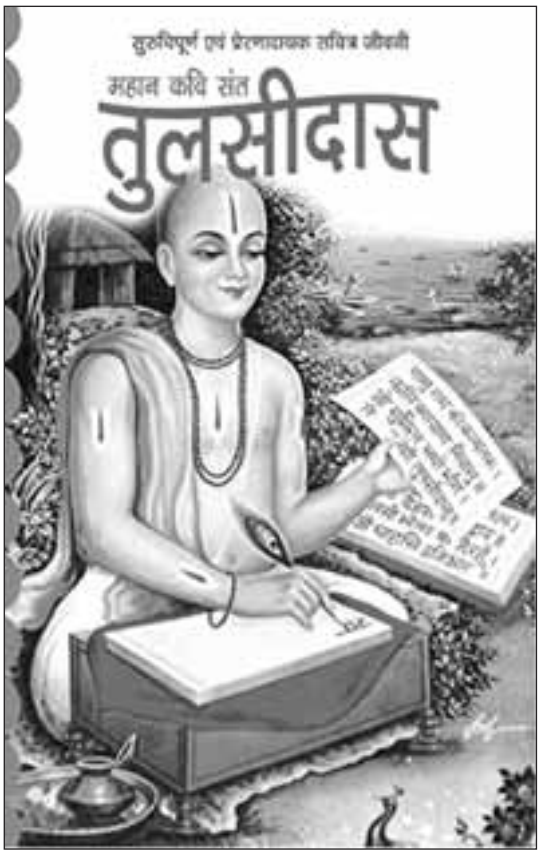

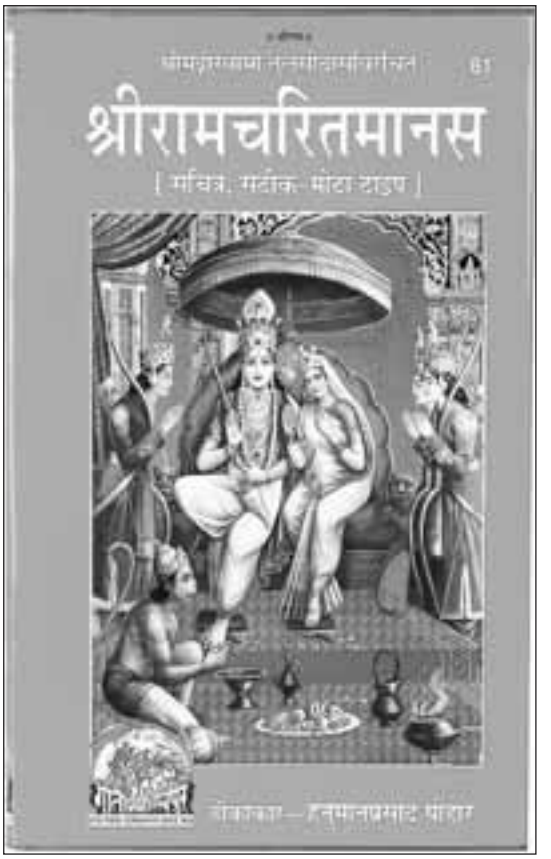

लेखों तथा काव्यों के गुण-दोष, भेद-प्रभेद, सौंदर्य अथवा नायिका-भेद और अलंकार आदि से संबंध रखनेवाले ग्रंथों के समूह को भी साहित्य कहा जाता है।

भक्तिकालीन साहित्य

साहित्य में पौराणिकता कई रूपों में परिलक्षित होती है। कुछ साहित्य तो विशुद्ध रूप से पौराणिकता में ही आबद्ध होते हैं; जैसे हिंदी का भक्तिकालीन साहित्य।

भक्ति काल में रचित राम काव्य परंपरा से संबंधित साहित्य मूल रूप से संस्कृत भाषा में रचित कवि वाल्मीकि की रामायण, संवृत रामायण, अगस्त्य रामायण, लोमक्ष रामायण, मंजुल रामायण, सौपय रामायण, महामाला रामायण, सौहार्द रामायण, मणिरत्न रामायण, सौर रामायण, चान्द्र रामायण, मैंद रामायण, स्वायं मुव रामायण, मुब्रल रामायण, सुवर्चस रामायण, देव रामायण, श्रावण रामायण, दुरंत रामायण तथा चम्पू रामायण आदि का सार्थक प्रभाव हैं। इसी प्रकार कृष्ण काव्य परंपरा से संबंधित ग्रंथों पर महाभारत, श्रीमद् भगवत गीता, जयदेव कृत गीतगोविंदम् आदि का उत्तम प्रभाव विद्यमान हैं। उदाहरण स्वरूप रामचरितमानस की यह पंक्तियाँ देखिए–

'हरि हर जस राकेस राहु से।
पर अकाज भट सहसबाहु से।।
जे पर दोष लखहिं सहसाखी।
पर हित घृत जिन्ह के मन माखी'।।[5]

भावार्थ यह है कि जो हरि और हरि के यशरूपी पूर्णिमा के चंद्रमा के लिए राहु के समान हैं (अर्थात् जहाँ कहीं भगवान् विष्णु या शंकर के यश का वर्णन

होता है, उसी में वे बाधा देते हैं) और दूसरों की बुराई करने में सहस्त्रबाहु के समान वीर हैं। जो दूसरों के दोषों को हजार आँखों से देखते हैं और दूसरों के हितरूपी घी के लिये जिनका मन मक्खी के समान है (अर्थात् जिस प्रकार मक्खी घी में गिरकर उसे खराब कर देती है और स्वयं भी मर जाती है, उसी प्रकार दृष्ट लोग दूसरों के बने बनाये काम को अपनी हानि करके भी बिगाड़ देते हैं। यहाँ यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि इन पंक्तियों में चंद्रमा, राहु, विष्णु, शंकर आदि पात्र, पौराणिक पात्र हैं जिनका प्रयोग करते हुए तुलसीदास ने दृष्टों की प्रवृत्ति का उद्घाटन किया है। इसी प्रकार सूरदास का यह पद्य देखिए–

'धीर धरो हरि कहत सबनि सौ,
गिरि गोवर्धन करत सहाइ।
नन्द गोप व्यालनि के आगै
देव कह्यौ यह प्रगट सुनाइ।
काहे कौ व्याकुल भएँ
डोलत रच्छा करै देवता आइ।
सत्य वचन गिरि-देव कहत है
कान्ह लेहि मोहि कर उचकाइ।
सूरदास नारी नर ब्रज के
कहत धन्य तुम कुँवर कन्हाई'।।[6]

अर्थात् श्री कृष्ण ने पर्वतराज गोर्वधन को उठा लिया। श्री कृष्ण सबसे कहते हैं कि धैर्य धरो, गोवर्द्धन पर्वत सहायता कर रहा है। नंद, गोप तथा ग्वालों के सामने देव ने यह प्रत्यक्ष सुनाकर कहा। (तुम लोग) व्याकुल होकर क्यों घूमते हो, देवता आकर रक्षा करता है। गिरि देवता सत्य वचन कहते हैं कि कृष्ण मुझे हाथ से उठाकर ऊँचा कर दे। सूरदास कहते हैं कि ब्रज के नर और नारी श्री कृष्ण से कहते हैं कि तुम धन्य हो। यह पद्य श्री कृष्ण का गोवर्धन पर्वत को उठाने वाले पौराणिक कथा-प्रसंग से प्रेरित होकर ही सूर ने सृजित किया है।

इसी प्रकार महाकवि निराला की- 'राम की शक्ति पूजा' भी उल्लेखनीय है। इनकी यह रचना समसामयिक संदर्भ के साथ-साथ पौराणिकता को भी लेकर चलती हैं। यथाः-

'साधु, साधु, साधक धीर, धर्म-धन धन्य राम!
कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।
देखा राम ने– सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वाम पद असुर-स्कंध पर रहा दक्षिण हरि पर
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध अस्त्र-सज्जित
मंदस्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग
दक्षिण गणेश, कार्तिक बाँयें रण रङ्ग राग
मस्तक पर शंकर पदपद्मो पर श्रद्धाभर
श्री राघव हुए प्रणत मन्दस्वर वन्दन कर।
'होगी जय, होगी जय, हे पुरषोत्तम नवीन!

कह महाशक्ति राम के वदन मे हुई लीन'॥[7]

हालाँकि कुछ विद्वान यह भी कहते हैं कि रामायण और महाभारत पुराण नहीं है जिसका उत्तर देते हुए डॉ. उमापति राय चंदेल लिखते हैं कि, 'रामायण और महाभारत की गणना पुराणों में नहीं होती, ये महाकाव्य हैं। फिर भी, पौराणिक आख्यानों का स्रोत अनुसंधान करने की दृष्टि से इनका बड़ा महत्त्व है। महाभारत तो अपने वर्तमान रूप में अधिकांशत, और उसका परिशिष्ट या खिल कहा जाने वाला हरिवंश तो पूर्णतः पुराण के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। रामायण के प्रथम और सप्तम अध्याय तथा उसके कुछ अंश भी अपने पौराणिक स्वरूप का साक्ष्य देते हैं'।[8] आप वर्तमान परिप्रेक्ष्य से देखें तो पद्य और गद्य दोनों में ही पौराणिकता परिलक्षित होती हैं।

भारतीय पौराणिकता का इतना गहन, अधिक तथा उत्तम-सार्थक विस्तार हैं कि इस पर विस्तृत चिंतन और मनन के लिए शोधात्मकत दृष्टिकोण होना चाहिए। सरल शब्दों में इतना ही कहा जा सकता है कि सुविधा की दृष्टि से इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं। प्रथम भाग में वेद, पुराण और महाकाव्य तथा उनके पात्र, देवताओं और उनसे संबंधित कहानियों का है।

भारतीय पौराणिक प्रसंग, पात्र आदि का मान-सम्मान, उनकी गौरवांवित कथाएँ आदि की प्रसिद्धि भी भारतीय संस्कृति में बहुत है, जिसके फलस्वरूप इन्हें साहित्य में पल्लवित होने का सुअवसर भी सदैव प्राप्त होता रहा और आगे भी होगा। इसी संदर्भ में सिद्धेश्वरी नारायण राय लिखते हैं कि, 'स्मरणीय है कि आख्यानों की लोकप्रियता इतनी अधिक थी तथा वैदिक काल से ही वे इतने महत्त्वपूर्ण समझे जाते थे कि पुराणों का अंग बनने के बाद भी उन्हें स्वतंत्र और पृथक मानने की प्रवृत्ति का सर्वधा तिरोभाव नहीं हुआ था'॥ साहित्य को केंद्रीकृत करके विचार करें तो हमें पता चलता है कि कुछ साहित्य में कुछ पौराणिक प्रसंग होते हैं तों कुछ साहित्य में पूर्ण पौराणिक प्रसंग होते हैं। इसी प्रकार कुछ साहित्य कुछ पौराणिक पात्रों को लेकर भी लिखे जाते हैं।[9]

भारतीय पौराणिकता का विस्तार

भारतीय पौराणिकता का इतना गहन, अधिक तथा उत्तम-सार्थक विस्तार हैं कि इस पर विस्तृत चिंतन और मनन के लिए शोधात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए। सरल शब्दों में इतना ही कहा जा सकता है कि सुविधा की दृष्टि से इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं। प्रथम भाग में वेद, पुराण और महाकाव्य तथा उनके पात्र, देवताओं और उनसे संबंधित कहानियों का है, तो द्वितीय भाग में लोक-विश्वासों, लोक-धारणा आदि से उपजी हुई साधारण स्तर की देवताओं की कहानियों से हैं। भारतवर्ष के प्रत्येक गाँव में हमें एक अलग देवता भी देखने को मिलते है और विराट रूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी मिलते हैं।

भारतीय संस्कृति में धन, यश, वैभव, कला-संगीत आदि से लेकर अग्नि, जल, वायु और आकाश के भी अलग-अलग देवी-देवता हैं। भारतीय संस्कृति में हनुमान राम काव्य से निकल कर आये हैं तो गणेश-गजानंद भगवान शिव की कथा से आये हैं। प्राकृतिक दृष्टिकोण से विचार करें तो नदी, नाले, पहाड़, पेड़ पशु-पक्षी भी यहाँ देवता रूप में पूजे जाते हैं। इसी प्रकार शीतला माता जैसी चेचक नामक बीमारी की देवी भी यहाँ की संस्कृति में विद्यमान है। इसीलिए भारतीय पौराणिकता की मूल जड़ें बहुत गहन हैं,

जिसके पीछे इसकी विराट परंपरा की सार्थक क्रियात्मकता है। भारतीय समाज के वर्चस्वशाली वर्ग में, जिसमें पंडित-पुरोहितों और सामंतों की मुख्य भूमिका रही, उन्होंने पौराणिकता के विकास में मुख्य योगदान देते हुए प्राचीन इतिहास का संरक्षण किया है। आज इसकी प्रामाणिकता, कोई टीले या किसी तरह की किसी चीज का उत्खनन हुआ और पुरातात्विक प्रमाण मिले, तब उन साक्ष्यों के आधार पर इतिहास का यह परिदृश्य अपना अस्तित्व बताता है।

राम और कृष्ण से संबंधित ग्रंथ

भारतीय संस्कृति के राम और कृष्ण हमारे पौराणिक धर्मग्रंथों के साथ-साथ, हमारे साहित्यिक काव्य ग्रंथों से भी संबंधित हैं। कुछ विद्वान काव्य ग्रंथों में वर्णित कथाओं, महापुरुषों आदि को कल्पित बताने का भी प्रयास करते हैं लेकिन जब उनसे प्रमाण माँगते हैं तो वह मुंह छिपाते फिरते हैं। हमारे काव्य ग्रंथों में हमारे सामाजिक जीवन के उत्तम तथा सार्थक अनुभव, चिंतन और मनन, सोच-विचार, रीति-रिवाज, कल्पनात्मक सौंदर्य, नैतिकता आदि बहुत से उपदेश तथा बातें अनुपम रूप से समाहित हैं। इस संदर्भ में हम यह कह सकते हैं कि हमारी पौराणिकता हमारे देश-समाज की अतुलनीय आत्मा है। परंपरागत दृष्टिकोण से अब विचार करें तो हम पाते हैं कि रामायण और महाभारत आदि महाकाव्यों में हमारे पौराणिक देव आदि की चर्चा मुख्य तौर पर उपलब्ध होती हैं और इन्हीं चर्चाओं का भारतीय संस्कृति में दृढ़ विश्वास स्थापित भी है। यथा–

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं यथावदनुभाषितम्।
राम-प्रीतिहमायुक्ते वाक्यमुत्तरमब्रवीतः।।[10]

भावार्थ यह है कि भगवान् हनुमान द्वारा यथावत् कहे हुए वचन सुनने के पश्चात श्रीराम अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले कि–

'कृतं हनुमता कार्य सुमहद्भुवि दुष्करम्।
मैनसासपि यदन्येन न शक्यं धरणीतले''।।[11]

अर्थात देखो, हनुमान जी ने ऐसा बड़ा काम किया है, जिसे इस पृथ्वीतल पर तो कोई भी कर नहीं सकता। करना तो जहाँ-तहाँ, ऐसा काम करने की इस संसार में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। श्रीराम आगे कहते हैं कि–

'न हि तं परिपश्यामि यस्तरेत महोदधिम्।
अन्यत्र गरुडाद्वायोरन्यत्र च हनूमतः'।।[12]

अर्थात् गरुड़ जी, पवन देव और हनुमान जी को छोड़, मुझे ऐसा और कोई नहीं दिखाई पड़ता जो महासागर के पार जा सकें। श्रीराम के यह वचन हनुमान जी को देवपुरुष सिद्ध करने का काम करते हैं और भारतीय संस्कृति और जन-मानस में यह प्रतिष्ठित भी है। इसी प्रकार महाभारत में द्रौपदी के चीरहरण के समय वासुदेव श्रीकृष्ण की सहायता करना भी अलौकिक है। यथाः-

'गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्णगोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।'
'हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाश।

भारतीय संस्कृति के राम और कृष्ण हमारे पौराणिक धर्मग्रंथों के साथ-साथ, हमारे साहित्यिक काव्य ग्रंथों से भी संबंधित हैं। कुछ विद्वान काव्य ग्रंथों में वर्णित कथाओं, महापुरुषों आदि को कल्पित बताने का भी प्रयास करते हैं लेकिन जब उनसे प्रमाण माँगते हैं तो वह मुंह छिपाते फिरते हैं। हमारे काव्य ग्रंथों में हमारे सामाजिक जीवन के उत्तम तथा सार्थक अनुभव, चिंतन और मनन अनुपम रूप से समाहित हैं।

कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरख जनार्दन'।।[13]

अर्थात् हे गोविन्द! हे द्वारकावासी श्रीकृष्ण! हे गोपाङ्गनाओं के प्राणवल्लभ केशव! कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं, क्या आप नहीं जानते? हे नाथ! हे रमानाथ! हे वज्रनाथ! हे संकटनाशन जनार्दन! मैं कौरवरूप समुद्र में डूबी जा रही हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। आगे–

'कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नं पाहि गोविंद कुरुमध्येस्दसीदतीम्'।।[14]

अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! महायोगिन! विश्वात्मन्! विश्वभावन! गोविंद! कौरवों के बीच में कष्ट पाती हुई मुझ शरणागत अबला की रक्षा कीजिये। आगे–

'याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा कृष्णो गहरितोस्भवत्।
त्यक्त्वा शय्यास्स्सनं
पद्भयां कृपालुः कृपयाभ्यगात्।
कृष्णं च विष्णुं च हरिं नरं च
त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी।
ततस्तु धर्मोस्न्तरितो महात्मा
समावृणोद् वै विविधैः सुवस्त्रैः'।।[15]

अर्थात् द्रुपदनन्दिनी की वह करुण पुकार सुनकर कृपालु श्रीकृष्ण गद्गद हो गये तथा शय्या और आसन छोड़कर दया से द्रवित हो, पैदल ही दौड़ पड़े। यज्ञसेनकुमारी कृष्णा अपनी रक्षा के लिये श्रीकृष्ण, विष्णु, हरि और नर आदि भगवन्नाम को जोर-जोर से पुकार रही थी। इसी समय धर्मस्वरूप महात्मा श्रीकृष्ण ने अव्यक्त रूप से उसके वस्त्र में प्रवेश करके भाँति-भाँति के सुंदर वस्त्रों द्वारा द्रौपदी को आच्छादित कर लिया। यह घटना पूर्ण रूप से चमत्कारी, अद्भुत और अलौकिक हैं, जिसकी छाप जन-मानस में आज भी विद्यमान है। पुराण विश्व में उपलब्ध साहित्य के बीच सबसे प्रचीनत्म ग्रँथ हैं। इनमें लिखित ज्ञान, विचार, चिंतन और नैतिकता के उपदेश आज भी अतुलनीय, प्रासंगिक, अमूल्य तथा मानव सभ्यता एवं जीवन की दृढ़ और सार्थक आधारशिला हैं।

वेदों की भाषा तथा शैली कठिन है किंतु पुराण उसी ज्ञान के सरल, सहज तथा रोचक विवरण को प्रस्तुत करता है। पुराणों में जटिल तथ्यों को कथाओं के माध्यम से, सुंदर तथा उत्तम रीति द्वारा समझाया गया है। पुराणों का विषय ज्ञान, विज्ञान, नैतिकता, विचार, भूगोल, खगोल, राजनीति, संस्कृति, सामाजिक परंपराओं, तथा अन्य विषयों से संबंधित हैं। मुख्य तौर पर पुराणों में देवी-देवताओं, राजाओं और ऋषि-मुनियों के साथ साथ जन-मानस की कथाओं का भी उत्तम

उल्लेख मिलता हैं, जिसके फलस्वरूप पौराणिक काल के सभी पहलूओं की जानकारी हमें प्राप्त हो जाती है। भारतीय परंपरा और मान्यता के अनुसार महर्षि वेदव्यास ने 18 पुराणों का संस्कृत भाषा में संकलन किया हैं। बह्मा, विष्णु तथा महेश्वर उन पुराणों के मुख्य देव हैं। त्रिमूर्ति के प्रत्येक भगवान स्वरूप को छः पुराण समर्पित किये गये हैं। इन 18 पुराणों के अतिरिक्त 16 उप-पुराण भी हैं। मुख्य 18 पुराणों के नाम इस प्रकार हैं–

1. बह्म पुराण
2. पद्म पुराण
3. विष्णु पुराण
4. वायु पुराण
5. भागवत पुराण
6. नारद पुराण
7. मार्कण्डेय पुराण
8. अग्नि पुराण
9. भविष्य पुराण
10. ब्रह्मवैवर्त पुराण
11. लिंग पुराण
12. वाराह पुराण
13. स्कंद पुराण
14. वामन पुराण
15. कूर्म पुराण
16. मत्स्य पुराण
17. गरुड पुराण
18. ब्रह्मांड पुराण

पुराणों के उद्भव के संदर्भ में विचार करते हुए महामहोपाध्याय पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी लिखते हैं कि–

'जिस प्रकार वेदों के मंत्र या सूक्त ईश्वर के अनुग्रह से पहले ब्रह्मा के हृदय में और फिर ब्रह्मा के अनुग्रह से भिन्न-भिन्न ऋषियों के हृदयाकाश में प्रकाशित हुए और उनके द्वारा मानव समाज मे विस्तृत हुए, उसी प्रकार सृष्टि आदि की पुराण-विद्या भी प्रथम ब्रह्मा के द्वारा ही प्रकट हुई और आगे देवताओं, ऋषियों या अवतारों के हृदय में स्फुरित होकर उनके द्वारा कथोपकथन से मानव समाज में फैलती रही, जिसका वर्णन पुराणों में ही मिलता है। मत्स्य, कूर्म, वाराह वामन आदि पुराण उन-उन अवतारो के द्वारा ही प्रचारित हुए है। वायु, ब्रह्मांण्ड, भविष्य आदि पुराण देवताओ के द्वारा और भागवत, मार्कण्डेय आदि ऋषियों के द्वारा शिष्य-परंपरा में फैलाये गये हैं। यह सब परंपरा उन पुराणो में ही लिखी मिलती है'।[16] भागवत महापुराण में श्री कृष्ण ने उद्धव को समझाते हुए ईश्वर अथवा भगवान के स्वरूप को प्रतिपादित किया है। यथा–

जिस प्रकार वेदो के मंत्र या सूक्त ईश्वर के अनुग्रह से पहले ब्रह्मा के हृदय में और फिर ब्रह्मा के अनुग्रह से भिन्न-भिन्न ऋषियों के हृदयाकाश में प्रकाशित हुए और उनके द्वारा मानव समाज मे विस्तृत हुए, उसी प्रकार सृष्टि आदि की पुराण-विद्या भी प्रथम ब्रह्मा के द्वारा ही प्रकट हुई और आगे देवताओं, ऋषियों या अवतारो के हृदय में स्फुरित होकर उनके द्वारा कथोपकथन से मानव समाज में फैलती रही।

'त्वं ब्रह्म परम साक्षादनाद्यन्तमपावृतम्।
सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः।।[17]

अर्थात् उद्धव ने कहा भगवन्! आप स्वयं परब्रह्म हैं, न आपका आदि है और न अंत। आप आवरण-रहित, अद्वितीय तत्त्व हैं। समस्त प्राणियों और पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति, रक्षा और प्रलय के कारण भी आप ही हैं। आगे–

'उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः।
उपासते त्वां भगवन् याथातथ्येन ब्राह्मणाः'।।[18]

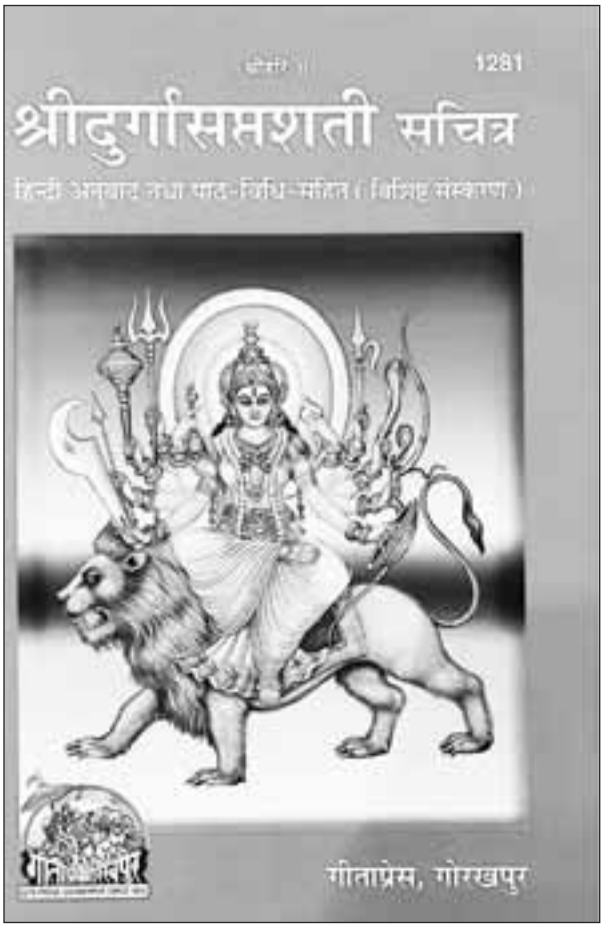

अर्थात् आप ऊँचे-नीचे सभी प्राणियों में स्थित हैं; परंतु जिन लोगों ने अपने मन और इंद्रियों को वश में नहीं किया है, वे आपको नहीं जान सकते। आपकी यथोचित उपासना तो ब्रह्मवेत्ता पुरुष ही करते हैं। आगे–

'येषु येषु च भावेषु भया त्वां परमर्षयः।
उपासीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद् वदस्व मे'।।[19]

अर्थात् बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि आपके जिन रूपों और विभूतियों की परम भक्ति के साथ उपासना करके सिद्धि प्राप्त करते हैं, वह आप मुझसे कहिये। आगे–

'गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावन।
न त्वां पश्यन्ति भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते'।।[20]

भावार्थ यह है कि समस्त प्राणियों के जीवनदाता प्रभो! आप समस्त प्राणियों की अंतरात्मा हैं। आप उनमें अपने को गुप्त रखकर लीला करते रहते हैं। आप तो सबको देखते हैं, परंतु जगत्के प्राणी आपकी माया से ऐसे मोहित हो रहे हैं कि वे आपको नहीं देख पाते हैं। पुराणों के अतिरिक्त दुर्गा-सप्तशती में पौराणिक देवियों की महिमा का यशोगाण भी हमें प्राप्त होता है। यथा–

ॐ यद्गुहमं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह'।।[21]

अर्थात् मार्कण्डेयजी ने कहा पितामह! जो इस संसार में परम गोपनीय तथा मनुष्यों की सब प्रकार से रक्षा करनेवाला है और जो अबतक आपने दूसरे किसी के सामने प्रकट नहीं किया हो, ऐसा कोई साधन मुझे बताइये। तब ब्रह्मा जी बोलते हैं कि–

ब्रह्ममोवाच अस्ति गुह्यतमं
विप्र सर्वभूतोपकारकम्।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तृच्छणुष्व महामुने'॥[22]

अर्थात् ब्रह्मन्! ऐसा साधन तो एक देवी का कवच ही है, जो गोपनीय से भी परम गोपनीय, पवित्र तथा संपूर्ण प्राणियों का उपकार करनेवाला है। महामुने! उसे श्रवण करो। आगे–

'प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चंद्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्'।।[23]

अर्थात देवी की नौ मूर्तियाँ हैं, जिन्हें 'नवदुर्गा' कहते हैं। उनके पृथक-पृथक् नाम बतलाये जाते हैं। प्रथम नाम शैलपुत्री है। दूसरी मूर्ति का नाम ब्रह्मचारिणी है। तीसरा स्वरूप चंद्रघण्टा के नाम से प्रसिद्ध है। चौथी मूर्ति को कूष्माण्डा कहते हैं। आगे–

'पंचम स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्'।।[24]

अर्थात् पाँचवीं दुर्गा का नाम स्कंदमाता है। देवी के छठे रूपको कात्यायनी कहते हैं। सातवाँ कालरात्रि और आठवाँ स्वरूप महागौरी के नाम से प्रसिद्ध है। आगे–

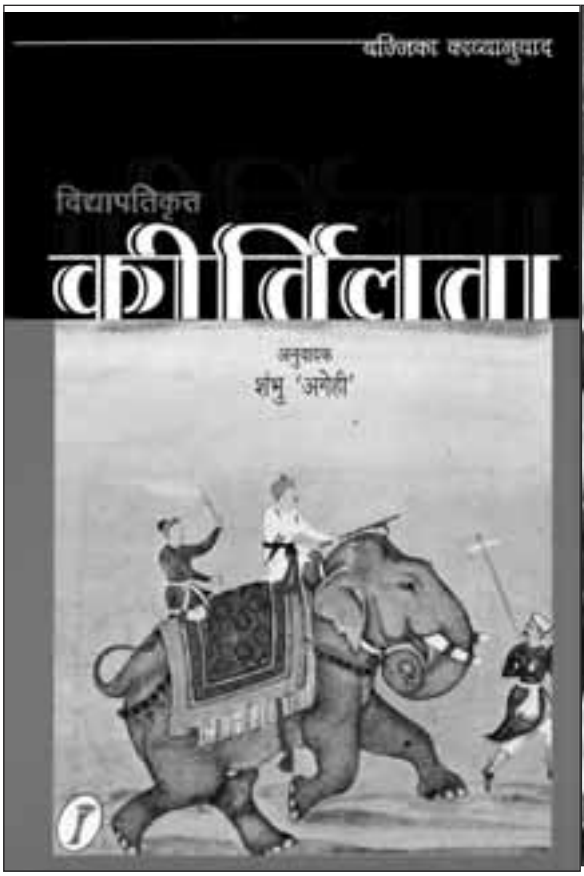

'नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना'।।[25]

अर्थात् नवीं दुर्गा का नाम सिद्धिदात्री है। ये सब नाम सर्वज्ञ महात्मा वेदभगवान् के द्वारा ही प्रतिपादित हुए हैं। आगे–

'अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः'।।[26]

भावार्थ यह है कि जो मनुष्य अग्नि में जल रहा हो, रणभूमि में शत्रुओं से घिर गया हो, विषम संकट में फँस गया हो तथा इस प्रकार भय से आतुर होकर जो भगवती दुर्गा की शरण में प्राप्त हुए हों, उनका कभी कोई अमंगल नहीं होता। युद्ध के समय संकट में पड़ने पर भी उनके ऊपर कोई विपत्ति नहीं आती हैं। पौराणिकता की परंपरा संस्कृत के सार्थक ग्रंथों के अलावा हिंदी साहित्य में भी विद्यमान है। आदिकाल के बहुत से काव्य ग्रंथों में मंगलाचरण की परंपरा हमें उपलब्ध होती है जिसके पीछे पौराणिकता का आदर्श स्वरूप निहित हैं।

विद्यापति की 'कीर्तिलता' के प्रारंभ में भगवान् बाल गणेश की स्तुति की गई है। यथा–

'पितरुपनय मह्यं नाकनद्या मृणालं'
'नहि तनय! मृणालः किन्त्वसौ सर्पराजः।
इति रुदति गणशे, स्मेरवक्त्रे च शम्भौ,
गिरिपतिक्तड़तनयायाः पातु कौतूहलं वः'।।[27]

अर्थात् गणेश कहते हैं कि पिताजी! आप अपने माथे पर स्थित स्वर्ग-गड़ग में उत्पन्न यह कमल-नाल मुझे दीजिए। शिव उत्तर देते हैं कि पुत्र! यह कमल-

नाल नहीं, किंतु सर्पराज (वासुकी) है। यह सुनकर बालक गणेश रोने लगे, शिवजी के मुख पर मुस्कुराहट आ गयी और गिरिराजपुत्री का यह कौतूहल (अद्भुत लीलादर्शन) आप पाठकों की रक्षा करें। इसके अलावा भक्ति काल में तो मुख्य रूप से पौराणिकता हमें प्राप्त होती है।

राम कवियों में शिरोमणि तुलसीदास की 'रामचरितमानस' में पौराणिकता के सार्थक स्वरूप एवं परंपरा के उत्तम दर्शन होते हैं। प्रथम सोपान; बालकांड में तुलसीदास लिखते हैं कि–

'वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ'।।[28]

अर्थात् अक्षरों, अर्थ समूहों, रसों, छंदों और मंगलों की करनेवाली सरस्वती जी और गणेश जी की मैं आपकी वंदना करता हूँ। आगे–

'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्'॥[29]

श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्रीपार्वतीजी और श्रीशंकरजी की मैं वंदना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते। आगे–

'वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चंद्रः सर्वत्र वन्द्यते'।।[30]

अर्थात् ज्ञानमय, नित्य, शंकररूपी गुरु की मैं वंदना करता हूँ, जिनके आश्रित होने से ही टेढ़ा चंद्रमा भी सर्वत्र वंदित होता है। आगे–

'सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ
वन्दे विशुद्धविज्ञान कवीश्वरकपीश्वरौ'।।[31]

अर्थात् श्रीसीतारामजी के गुण समूह रूपी पवित्र वन में विहार करनेवाले, विशुद्ध विज्ञान संपन्न कवीश्वर श्रीवाल्मीकिजी और कपीश्वर श्रीहनुमान्जी की मैं वंदना करता हूँ। इससे स्पष्ट है कि पौराणिकता का अनुपम एवं उत्तम स्वरूप हमें तुलसीदास के काव्य में उपलब्ध होता हैं। इसी प्रकार एक पौराणिक प्रसंग के अनुसार जब जामवंत हनुमान को उनकी शक्तियों का आभास करवाते हैं तो उस प्रसंग को तुलसीदास इस प्रकार लिखते हैं कि–

'कवन सो काज कठिन जग माहीं।
जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा।
सुनतहिं भयउ पर्बताकारा'।।[32]

अर्थात् जगत् में कौन-सा ऐसा कठिन काम है जो हे तात! तुमसे न हो सके। श्रीरामजी के कार्य के लिए ही तो तुम्हारा अवतार हुआ है। यह सुनते ही हनुमानजी पर्वत के आकार के (अत्यंत विशालकाय) हो गये। आगे–

'कनक बरन तन तेज बिराजा।
मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा।
लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा'॥[33]

अर्थात् उनका सोने-सा रंग है, शरीर पर तेज सुशोभित है, मानो दूसरा पर्वतों का राजा सुमेरु हो। हनुमानजीने बार-बार सिंहनाद करके कहा- मैं इस खारे समुद्र को खेल में ही लाँघ सकता हूँ। आगे–

'सहित सहाय रावनहि मारी।
आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥
मवंत मैं पूँछउँ तोही।
उचित सिखावनु दीजहु मोही'।।[34]

अर्थात् और सहायकों सहित रावण को मारकर त्रिकूट पर्वत को उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ। हे जाम्बवान्! मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझे उचित सीख देना कि मुझे क्या करना चाहिए। इसी प्रकार सूरदास, मीरा, रसखान तथा रीतिकाल के कवियों में भी पौराणिकता के दर्शन होते हैं।

चंडी दी वार

ੴ वी वाहिगुरू जी की फ़तह ॥
वी भगउती जी सहाइ ॥
वार वी भगउती जी की पातसाही १० ॥
प्रिथम भगौती सिमरि कै गुरु नानक लई धिआइ ॥
फिर अंगद गुर तै अमरदासु रामदासै होई सहाइ ॥
अरजन हरिगोबिंद नो सिमरौ वी हरिराइ ॥
वी हरि किशन धिआईऐ जिस डिठे सभि दुखि जाइ ॥
तेग बहादर सिमरिऐ घर नउ निधि आवै धाइ ॥
सभ थाईं होइ सहाइ ॥१॥
ੴ
पउड़ी ॥
खंडा प्रिथमै साज कै जिन सभ सैसारु उपाइआ ॥
ब्रहमा बिसनु महेस साजि कुदरति दा खेलु रचाइ
बणाइआ ॥
सिधु परबत मेदनी बिनु थम्हा गगनि रहाइआ ॥
सिरजे दानो देवते तिन अंदरि बादु रचाइआ ॥
तै ही दुरगा साजि कै दैता दा नासु कराइआ ॥
तैथों ही बलु राम लै नाल बाणा दहसिरु घाइआ ॥
तैथों ही बलु क्रिसन लै कंसु केसी पकड़ि गिराइआ ॥
बडे बडे मुनि देवते कई जुग तिनी तनु ताइआ ॥
किनी तेरा अंतु न पाइआ ॥२॥
साधू सतजुगु बीतिआ अध खीनी बेता आइआ ॥
ग्यी कलि सतोसरी कलि नारद डउरू वाइआ ॥
अभिमानु उतारन देवतिआं महिखासुर सुमभ उपाइआ
॥
जीति लए तिनि देवते तिहु लोकी राजु कमाइआ ॥
वडा वीर अखाड़ै कै सिर उपरि छत्रु फिराइआ ॥

_गुरु गोविंद सिंह की रचनाओं में पौराणिकता

सिख पंथ के गुरु गोविंद सिंह की रचनाओं में भी पौराणिकता विद्यमान है। यथा–

'खंडा प्रिथमै साजिकै जिन सभ सैसारु उपाइया।

ब्रह्म बिसनु महेस साजि कुदरति दा खेलु रचाइ बणाइआ।।

सिंधु परबत मेदनी बिनु थम्हा गगनि रहाइआ।

सिरजे दानो देवते तिन अंदरि बादु रचाइआ।।

तै ही दुरगा साजिकै दैता दा नासु कराइआ।

तैथों ही बलु राम लै नाल बाणा दहसिरु घाइआ।।

तैथों ही बलु क्रिसन लै कंसु कैसी पकडि गिराइआ।

बड़े बड़े मुनि देवते कई जुग तिनी तनु ताइआ।।

किनी तेरा अंतु न पाइआ'।।[35]

अर्थात् सर्वप्रथम परब्रह्म परमात्मा ने शक्ति को आविर्भूत किया। शक्ति से तीन गुण (सत्त्व, रज, तमस्) प्रकट हुए और उन तीनों गुणों से समस्त संसार उत्पन्न हुआ। रजोगुण के अधिपति ब्रह्मा , सतोगुण के अधिपति विष्णु और तमोगुण के अधिपति के रूप में शंकर को प्रतिष्ठित किया और इन्हीं के द्वारा संपूर्ण सृष्टि का सृजन, पालन और प्रलय की व्यवस्था की हैं। परमात्मा ने समुद्र, पर्वत, पृथ्वी बनाये और बिना किसी सहारे के आकाश बना दिया। फिर पृथ्वी पर दानव और देवता बनाये तथा उनमें शत्रुता उत्पन्न कर दी। हे अनंत शक्तिमान परमात्मा ! आपने ही दुर्गा भगवती को प्रकट कर उसके द्वारा दैत्यों का नाश करवाया। आपसे ही शक्ति प्राप्त करके श्री राम ने अपने वाण द्वारा रावण का वध किया। आपसे ही शक्ति लेकर श्री कृष्ण ने दुष्ट कंस को उसके केशों से पकड़ कर उसका वध किया। हे परमात्मा ! बड़े-बड़े मुनिगण और देवताओं ने कई युगों तक घोर तप द्वारा अपने शरीर को तपाया, परंतु हे अनंत परमात्मा ! कोई भी तुम्हारा अंत न पा सका।

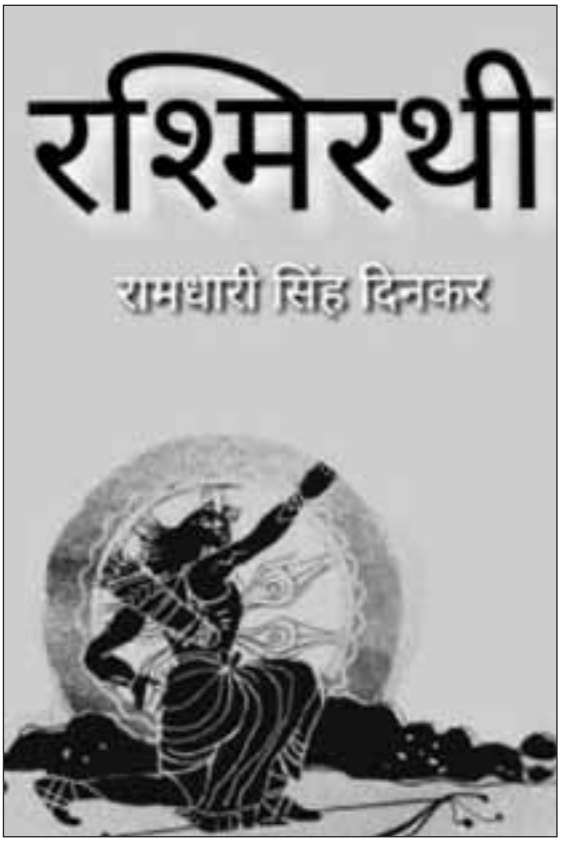

आधुनिक कालीन साहित्य

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल के भी बहुत से कवियों ने पौराणिकता से प्रेरणा लेकर बहुत सी रचनाएँ लिखी हैं। जैसे जयशंकर प्रसाद की कामायनी, मैथिलीशरण गुप्त की साकेत, निराला की राम की शक्ति पूजा, धर्मवीर भारती की अंधा युग तथा कवि दिनकर की उर्वशी, रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र, परशुराम की प्रतीक्षा आदि। कवि दिनकर की रचना रश्मिरथी महाभारत के कथा प्रसंगों पर आधारित है जिसमें उन्होंने पौराणिकता का उत्तम समावेश करते हुए वर्तमान संदर्भ को भी परिभाषित किया है। यथा–

'फिरा कर्ण, त्यों साधु-साधु कह उठे
सकल नर-नारी।
राजवंश के नेताओं पर पड़ी मुसीबत भारी।
द्रोण, भीष्म, अर्जुन, सब फीके,
सब हो रहे उदास,
एक सुयोधन बढ़ा, बोलते हुए,
वीर ! शाबाश ! ॥[36]

इस प्रकार हमें पता चलता है कि पौराणिकता की विराट् और सार्थक परंपरा का समावेश भारतीय साहित्य में मुख्य रूप से उपलब्ध होता हैं। पौराणिकता का स्वरूप, उसका आदर्श तथा उसका महत्त्व आदि सभी कुछ भारतीय संस्कृति, परंपरा और साहित्य में सम्मिलित है जिसका कारण पौराणिकता की महत्ता अथवा महत्त्व है। पौराणिकता से नीति तथा उपदेशों की भी सार्थक शिक्षा मिलती है जिससे जन-मानस शिक्षित होकर जीवन में कल्याण के पथ पर अग्रसर होता है। ज्ञान-विज्ञान की समस्त शिक्षाओं का प्रतिपादन भी पुराणों में वर्णित है जो कि आज भारत ही नहीं समस्त विश्व के देशों का कल्याण कर रही है।

पुराणों में भारतीय इतिहास की भी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है जिससे हमें पता चलता है कि प्राचीन काल में कौन-कौन से राजा थे, किस प्रकार की शासन व्यवस्था थी और किस प्रकार के भीषण युद्ध लड़े जाते थे। इसी प्रकार पुराणों में अलौकिक घटनाओं का भी विशेष उल्लेख हमें प्राप्त होता है। जिससे सृष्टि निर्माण, ईश्वर के स्वरूप, माया, प्रकृति और मानव के सार्थक कार्यों की चर्चा मिलती है और पुराणों ने ही भारतीय दर्शन शास्त्र की सुदृढ़ नींव प्रतिपादित की थी। इसी संदर्भ में वे. वरदाचार्य लिखते हैं कि, ''पुराणों की मुख्य देन आस्तिकवाद का प्रबल समर्थन है। उनमें बहुत से देवताओं का वर्णन है। वे घोषित करते हैं कि सभी देवता समान है, परंतु वे किसी एक देवता का महत्त्व स्थापित करते हैं। उनमें किसी एक विशेष देवता की उपासना बताई गई है, परंतु अन्य देवता की उपासना का निषेध नहीं किया गया है। इस प्रकार वे एक देवता की उपासना पर बल देते हैं, परंतु

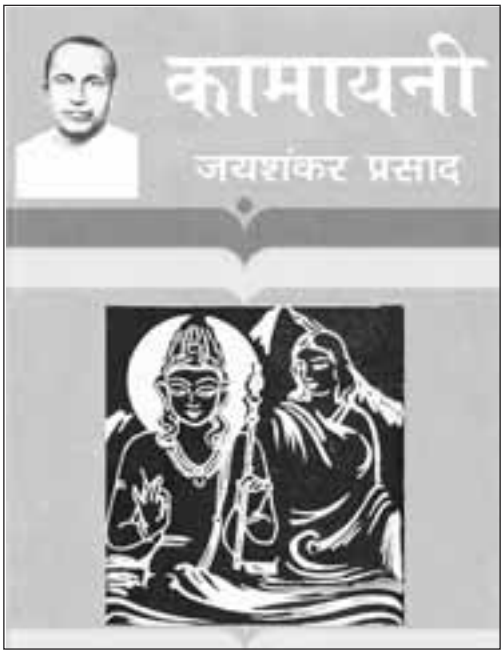

पौराणिक प्रसंगों पर आधारित है कामायनी व साकेत महाकाव्य ।

अन्य की अपेक्षा उसे मुख्य मानकर उपासना का निषेध करते हैं। पुराणों का धर्म बहुदेवतावादी कहा जा सकता है, परंतु वह सर्वदेवता- वादी है। पुराण ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनमें जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसके द्वारा प्राचीन भारत का इतिहास तैयार किया जा सकता है। उनमें शिशुनाग, नंद, मौर्य, शुंग, आंध्र, गुप्त आदि प्रमुख राजवंशों का वर्णन मिलता है'।[37] इससे स्पष्ट है कि पुराणों में बहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ, तथ्य और भारतीय इतिहास विद्यमान है तथा जो लोग पुराणों को संदेह की नजर से देखते हैं उन्हें पुराणों को अध्ययन करने की आवश्यकता है। इसी प्रकार सिद्धेश्वरी नारायण राय लिखते हैं कि, 'इसमें संदेह नहीं कि प्राचीन भारतीय संस्कृति के कलेवर निर्माण में साहित्य का स्थान विशिष्ट रहा है। इसके साहित्यिक अवयव में भी जो उपादान अपेक्षित रहे हैं, उनमें पुराण-ग्रंथों ने अपना पृथक् स्थान बनाया था पुराण, संकलित ग्रंथ हैं तथा इन ग्रंथों के संकलनकर्त्ताओं को, इनकी संरचना के निमित्त एक विशद् तथा पूर्व पौराणिक विशेषतयाँ वैदिक साहित्य से भिन्न शैली को अपनाना पड़ा था ।[38]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पौराणिकता का संबंध हमारे पूर्वजों, पूर्व-समय आदि से संबंधित है जो हमारे गौरवशाली इतिहास, सार्थक दर्शन और उत्तम आध्यात्मिक चेतना का आधारभूत हैं। इसे संरक्षित करना तथा इसका अध्ययन करते हुए समाज का कल्याणार्थ, तथा ज्ञानात्मक सूचना का प्रतिपादन करना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है तथा यही भारतीय ज्ञान परंपरा की अनुपम विशेषता हैं।

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में शोधार्थी हैं।

संदर्भ

1. वर्धा हिंदी शब्दकोश, प्रधान संपादक रामप्रकाश सक्सेना तथा सहायक संपादक शोभा पालीवाल, प्रकाशक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण,सन् 2013,पृष्ठ संख्या1917

2. https://dict.hinkhoj.com/mythology-meaning-in-hindi.words?amp=1

3. मानक हिंदी कोश (पांचवा खंड), प्रधान संपादक रामचंद्र वर्मा तथा सहायक संपादक बदरीनाथ कपूर, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रकाशक मोहनलाल भट्ट, प्रथम संस्करण सन् 1966, पृष्ठ संख्याः356

4. वही, पृष्ठ संख्या356

5. श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी विरचित श्रीरामचरितमानस, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार,गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण-95, संवत 2075अर्थात् सन् 2018, बालकांड, प्रथम सोपान, दोहा-3, चौपाई संख्या2, पृष्ठ संख्या 37 और 38

6. सूरसागर सार सटिक, संपादक डॉ. धीरेंद्र वर्मा, प्रकाशक साहित्य भवन लिमिडेड प्रयागराज, पंचम संस्करण, सन् 1986, छंद संख्याः72, पृष्ठ संख्याः107

7. निराला रचनावली, भाग-1, संपादक नंदकिशोर नवल, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन,दिल्ली, प्रथमसंस्करण, सन् 1983,राम की शक्ति पूजा, पृष्ठ संख्याः319

8. पौराणिक आख्यानों का विकासात्मक अध्ययन, लेखक डॉ. उमापति राय चंदेल, प्रकाशक कोणार्क प्रकाशन,प्रथम संस्करण, सन् 1975,पृष्ठ संख्या10

9. पौराणिक धर्म एवं समाज, लेखक सिद्धेश्वरी नारायण राय, प्रकाशक पंचानंद पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, सन् 1968, पृष्ठ संख्याः5

10. श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण (युद्धकांड पूर्वार्द्ध), अनुवादक चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, प्रकाशक रामनारायण लाल पब्लिर्श और बुक सेलर, प्रयागराज, प्रथम संस्करण, सन् 1927, प्रथम सर्ग, श्लोक संख्याः1, पृष्ठ संख्याः1

11. वही, प्रथम सर्ग, श्लोक संख्याः2, पृष्ठ संख्याः1

12. वही, प्रथम सर्ग, श्लोक संख्याः3, पृष्ठ संख्याः1

13. श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत महाभारत (प्रथम खंड), अनुवादक पंडित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम', गीता प्रेस गोरखपुर, 77 वां संस्करण, संवतो 2072 अर्थात् सन् 2015अष्टषष्टितमोस्ध्यायः, श्लोक संख्याः41 और 42, पृष्ठ संख्याः902

14. वही, अष्टषष्टितमोस्ध्यायः, श्लोक संख्याः43, पृष्ठ संख्याः902

15. वही, अष्टषष्टितमोस्ध्यायः, श्लोक संख्याः46, पृष्ठ संख्याः903

16. पुराण-परिशीलन, लेखक महामहोपाध्याय पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, प्रकाशक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, प्रथम संस्करण, संवत् 2000

अर्थात् सन् 1943, पृष्ठ संख्याः13

(17) श्रीमद्भागवत-महापुराण (द्वितीय खंड), गीता प्रेस गोरखपुर, 99 वां संस्करण, संवत 2077 अर्थात् सन् 2020, अथ षोडशोस्ध्यायः, श्लोक संख्याः1, पृष्ठ संख्याः809

18. वही, अथ षोडशोस्ध्यायः, श्लोक संख्याः2, पृष्ठ संख्याः809

19. वही, अथ षोडशोस्ध्यायः, श्लोक संख्याः3, पृष्ठ संख्याः80

20. वही, अथ षोडशोस्ध्यायः, श्लोक संख्याः4, पृष्ठ संख्याः809

21. श्री दुर्गासप्तशती, अनुवादक पंडित श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम', गीता प्रेस गोरखपुर, 75 वां संस्करण, संवत 2078 अर्थात् सन् 2021, अथ देव्याः कवचम्, श्लोक संख्याः1, पृष्ठ संख्याः19

22. वही, अथ देव्याः कवचम्, श्लोक संख्याः2, पृष्ठ संख्याः19

23. वही, अथ देव्याः कवचम्, श्लोक संख्याः3, पृष्ठ संख्याः19

24. वही, अथ देव्याः कवचम्, श्लोक संख्याः4, पृष्ठ संख्याः19

25. वही, अथ देव्याः कवचम्, श्लोक संख्याः5, पृष्ठ संख्याः20

26. वही, अथ देव्याः कवचम्, श्लोक संख्याः6, पृष्ठ संख्याः20

27. विद्यापति कृत कीर्त्तिलता, संपादक तथा अनुवादक डॉ. शशिनाथ झा, प्रकाशक भवनाथ झा, प्रथम ई बुक संस्करण, सन् 2020, प्रथमः पल्लवः, छंद संख्याः1, पृष्ठ संख्याः39

28. श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीविरचित श्रीरामचरितमानस, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण-95, संवत् 2075 अर्थात् सन् 2018, प्रथम सोपान, बालकांड, श्लोक संख्याः1, पृष्ठ संख्याः17

29. वही, प्रथम सोपान, बालकांड, श्लोक संख्याः2, पृष्ठ संख्याः17

30. वही, प्रथम सोपान, बालकांड, श्लोक संख्याः3, पृष्ठ संख्याः17

31. वही, प्रथम सोपान, बालकांड, श्लोक संख्याः4, पृष्ठ संख्याः17

32. वही, चतुर्थ सोपान, किष्किन्धाकांड, छंद संख्याः29-3, पृष्ठ संख्याः710

33. वही, चतुर्थ सोपान, किष्किन्धाकांड, छंद संख्याः29-4, पृष्ठ संख्याः710

34. वही, चतुर्थ सोपान, किष्किन्धाकांड, छंद संख्याः29-5, पृष्ठ संख्याः710

35. चंडी दी वार, व्याख्याकार ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा तथा संपादक डॉ. मनीषा परिव्राजिका, दिव्यालोक प्रकाशन, पिंजौर हरियाणा, प्रथम संस्करण, सन् 1999,सतिगरु प्रसादि, पउड़ी संख्याः2, पृष्ठ संख्याः 18

36. रश्मिरथी, कवि श्रीरामधारी सिंह दिनकर, प्रथम सर्ग, पृष्ठ संख्याः3

37. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक वे. वरदाचार्य तथा अनुवादक कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ संख्याः88

38. पौराणिक धर्म एवं समाज, लेखक सिद्धेश्वरी नारायण राय, प्रकाशक पंचानंदपब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, सन् 1968, पृष्ठ संख्याः3

मनोगत

मान्यवर महोदय,

आपको मकर संक्रांति, गणतंत्र दिवस, बसंत पंचमी व होली की हार्दिक शुभकामनाएँ ।

यह परम सौभाग्य की बात यह है कि 'मंगल विमर्श' को आपका स्नेह निरंतर मिल रहा है। आपके सहयोग के बल पर ही पत्रिका के नौ वर्ष सफलतापूर्वक पूर्ण हुए हैं और 'मंगल विमर्श' ने दसवें वर्ष में प्रवेश किया है। इस अवसर पर पत्रिका का जनवरी-मार्च, 2024 अंक प्रस्तुत करते हुए सुखद अनुभूति हो रही है।

पत्रिका के बीजवपन से लेकर ही हमें विद्वान लेखकों, प्रबुद्ध पत्रकारों, समाजशास्त्रों, अर्थशास्त्रियों, इतिहासकारों, वैज्ञानिकों व अन्य विषयों के विद्वान विशेषज्ञों का अमूल्य सहयोग निरंतर मिलता रहा है। जिनके बल पर ही पत्रिका ने नौ वर्ष पूर्ण किये हैं। आप सबके सहयोग के बिना पत्रिका का आगे बढ़ना कदापि संभव नहीं था। हम कृतज्ञतापूर्वक आप सबके आभारी हैं।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास भी है कि आप सब का स्नेह व सहयोग भविष्य में भी निरंतर मिलता रहेगा।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

'मंगल विमर्श' पत्रिका का स्वामित्व संबंधी विवरण

1. प्रकाशन स्थान	:	सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110084
2. प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम	:	आदर्श गुप्ता
क्या भारत का नागरिक है	:	हाँ
पता	:	बी-170, प्रियदर्शिनी विहार, दिल्ली-92
4. प्रकाशक का नाम	:	आदर्श गुप्ता
पता	:	बी-170, प्रियदर्शिनी विहार, दिल्ली-92
5. संपादक का नाम	:	सुनील पांडेय
पता	:	120-वार्तालोक अपार्टमेंट, वसुंधरा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	:	मंगल सृष्टि

मैं आदर्श गुप्ता एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य है।

दिनांक : 01 जनवरी, 2024

आदर्श गुप्ता
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

मंगल विमर्श
सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श **त्रैमासिक पत्रिका**

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए
₹2000 मात्र

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-42633153

मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....

रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. ..... दिनांक.....

बैंक..... भेज रहे हैं,

कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम.....

पता.....

.....

..... पिनकोड .....

फोन :..... मोबाइल:.....

इ-मेल.....

ई-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in

www.globecapital.com

Trusted by you, APPRECIATED BY THE WORLD.

Awarded as India's Best Market Analyst 2012*

*In 'Commodities Energy' category by Zee Business

Awarded as India's Best Market Analyst 2013*

*In 'Commodities Viewers Choice' by Zee Business

Awarded as India's Best Market Analyst 2014*

*In 'Commodities Editor's Choice' category by Zee Business

GLOBE
money *must* grow

Globe Capital Market Limited

Globe Commodities Limited